प्रकाशक,
साहित्य-भवन, लिमिटेड,
इलाहाबाद।

मुद्रक,
सूरजप्रसाद खन्ना,
हिन्दी-साहित्य प्रेस,
प्रयाग।

# विषय-सूची

## विचार-भाग


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १—प्रवेश ... ... ... | १ |
| २—साधन ... ... ... | ३ |
| ३—भाषा और उसका साहित्यिक रूप ... | ९ |
| ४—विषय ... ... ... | १६ |
| ५—निबन्ध-भेद ... ... ... | १७ |
| ६—शैली ... ... ... | २३ |
| ७—शैली का स्वरूप ... ... | २६ |
| ८—अलंकार ... ... ... | ३३ |
| ९—निबन्ध का आरम्भ ... ... | ३७ |


## लेख-भाग


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १—सूर्योदय [ सुबोध शैली में ] ... | ४६ |
| २—सूर्योदय [ अलंकृत शैली में ] ... | ४८ |
| ३—दयानन्द शताब्दी ... ... | ५० |
| ४—भारत के साधु और फ़कीर ... | ५८ |
| ५—मेरी सिंहगढ़ यात्रा ... ... | ६२ |
| ६—ग्राम्य जीवन के आनन्द ... ... | ६९ |
| ७—स्वामी विवेकानन्द ... ... | ७३ |
| ८—निन्यानवे का फेर ... ... | ७९ |
| ९—वायु-यान ... ... ... | ८३ |
| १०—वर्षा-विहार ... .. ... | ८६ |
| ११—शरीर-रक्षा . .. .. | ८९ |

| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १२—किसान ... ... ... | ९६ |
| १३—एक प्यारा चरित्र [ लक्ष्मण ] ... | १०० |
| १४—एक छड़ी की आत्म-कहानी [ काल्पनिक ] | १०५ |
| १५—पशुओं के साथ कठोरता ... ... | ११० |
| १६—कर्तव्य ... ... ... | ११६ |
| १७—आलस्य ... ... ... | १२० |
| १८—आदर्श का प्रभाव ... .. | १२५ |
| १९—उन्माद .. ... ... | १३० |
| २०—दरिद्रता .. ... ... | १३३ |
| २१—श्रद्धा ... .. ... | १३७ |
| २२—मनुष्यता .. ... ... | १४२ |
| २३—चरित्र-बल ... ... ... | १४५ |
| २४—कलम और तलवार ... | १४९ |
| २५—पढ़ने के आनन्द .. .. | १५४ |
| २६—१९२६ की चुनाव लीला ... ... | १५६ |
| २७—काशी की शोभा ... ... | १६१ |
| २८—बचपन [ सरल शैली में ] ... | १६३ |
| २९—बचपन [ भावात्मक ] .. .. | १६८ |
| ३०—फलदार वृक्ष [ भावात्मक ] ... | १७३ |
| ३१—बादल [ भावात्मक ] ... ... | १७६ |
| ३२—माँ का हृदय ... .. | १७९ |
| अभ्यास के लिए लेख .. ... | १८० |

# पहली बात

इस पुस्तक का उद्देश विद्यार्थियों के सामने निबन्ध का आदर्श रखना है। इस भार को अपने सिर पर ले चुकने के पश्चात् हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। निबन्ध का विषय छोटी कक्षाओं से लेकर कालेज तक रहता है। भिन्न-भिन्न श्रेणी के विद्यार्थियों की रुचि भी अलग अलग होती है। अध्यापकों का मत भी इस विषय में एक नहीं। किसीने चाहा कि लेख छोटे-छोटे हों, किसीने चाहा बड़े-बड़े हों। किसीने कहा, परीक्षा ही प्रधान ध्येय रखी जाय, किसीने कहा, वास्तविक योग्यता को महत्व दिया जाय। सारांश, जितने मुँह उतनी बातें सुनने को मिलीं।

स्कूल के विद्यार्थियों को अपने भाव-प्रकाशन का ढंग आना चाहिए। उनकी भाषा शुद्ध और उसका प्रयोग ठीक होना चाहिए। भावों की गूढ़ता और शैली की विचित्रता उनकी ज्ञान-वृद्धि के साथ साथ स्वयं बढ़ती जायगी। आदर्श लेख का अभिप्राय यह कदापि नहीं कि उसे रट लिया जाय। परीक्षा हमारी शिक्षा का उद्देश नहीं, वह केवल योग्यता की जाँच का एक साधन है। यदि उचित मार्ग से चलकर योग्यता में वृद्धि

की जाय, तो परीक्षा में पास होना ध्रुव है। परीक्षक सदैव श्रेणी का विचार करके योग्यता की जाँच करता है। फिर, हमें जिस लक्ष्य का भेद करना है, उससे ऊँचा निशाना लेने से ही हमारा तीर वहाँ तक पहुँच सकता है। इसलिए लक्ष्य सदैव ऊँचा होना चाहिए। आदर्श का उच्च होना पहली बात है। तभी तो उसका अनुसरण करने में लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त लेखों की सीमा नहीं। एक ही बात पर कई प्रकार से लेख लिखा जा सकता है, एक ही दृश्य को कितनी ही दृष्टियों से देखा जा सकता है। इसलिए किसी लेख को रटना न केवल व्यर्थ ही है, वरन् हानिकारक भी है। उससे हमारी बुद्धि का विकास रुकता है। इसके विपरीत, ऊँचे आदर्श को सामने रखने से उसका थोड़ा भी भाव हम ग्रहण कर सकें, तो भी हमारा ज्ञान बढ़ता है।

इन बातों को ध्यानमें रखकर ही हमने इस पुस्तक को लिखने की चेष्टा की है। हम मानते हैं कि योग्य शिक्षक ही लेखक का सबसे अच्छा आदर्श है, परन्तु वह आदर्श सर्वत्र मिलना दुर्लभ है और बिना नमूने के विद्यार्थियों के लिए आगे बढ़ना भी बड़ा दुष्कर है। फिर, भाषा का प्रयोग बिना, अच्छे-अच्छे लेखकों की रचना के पढ़े कदापि नहीं आ सकता। यही कारण है कि बड़े बड़े विद्वानों के सुन्दर प्रयोग हमारी जीभ पर चढ़ जाते हैं और उनसे हमारी भाषा में प्रौढ़ता आती है।

इस पुस्तक के हमने दो विभाग किये हैं। विचार भाग में रचना के सभी अङ्गों पर संक्षेप में, किन्तु पूर्णरूप से विचार किया गया है। विद्यार्थियों को निबन्ध लिखने में जो कठिनाइयाँ पड़ती हैं, उन पर भी पूर्ण प्रकाश डाला गया है। लेख-भाग में हमारे ३२ स्वतंत्र लेखों का संग्रह है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए लेखों का ढाँचा भी दे दिया गया है। यों तो सहस्रों लेख लिखकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि सब की इच्छा की पूर्ति हो जायगी, परन्तु निबन्ध की दिशा दिखाने में इस पुस्तक से समुचित सहायता मिलेगी यह हमारी धारणा है।

कुछ लेख इस पुस्तक में छः वा सात पृष्ठों तक में आये हैं। इसलिए वे विद्यार्थियों के लिए बहुत लम्बे समझे जा सकते हैं; परन्तु, वर्णन को पूरा करने की दृष्टि से ही हमने उन्हें लिखा है। उनके वर्णन को कई भागों में बाँट देने से भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णनों के छोटे-छोटे लेख बन सकते हैं। लेख की सीमा को छोटा करके एक ही लेख में कई लेखों की सामग्री टटोलना पाठकों का काम है। जैसे, भोजन सामने होने पर अपने अनुकूल ग्रास बनाना खानेवाले का ही काम है। आशा है इस दृष्टि से हमारे पाठक उन्हें अनुचित लम्बा न समझेंगे।

रचना की भाषा के नियम, मुहाविरों के प्रयोग, चिन्हों की योजना आदि पर इस पुस्तक में कुछ नहीं लिखा गया। ऐसा करने से पुस्तक का आकार बढ़ जाने का भय था और एक ही

जगह भानुमती का-सा कुनबा जोड़ना हमें ठीक भी नहीं जँचा। हम यह मानकर चले हैं कि पाठकों को साधारण भाषा तथा व्याकरण का ज्ञान है। भाषा के शुद्ध लेखन आदि पर हम एक स्वतंत्र पुस्तक लिख रहे हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। शब्दों के हिज्जों में संभव है, कहीं-कहीं किसी का हम से मत-भेद हो। जैसे, 'क़लम' की अपेक्षा हमने संस्कृत का शब्द 'कलम' ही अच्छा समझा है।

विचार-भाग में निबन्ध की भाषा और शैली के विषय में हमने अँगरेजी की पुस्तकों से बहुत सहायता ली है। उसके लिए उनके लेखकों के प्रति हम विनीतभाव से कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

छोटा भी आदर्श सामने रखना सहज काम नहीं। अपनी त्रुटियों की ओर देखकर हमें इस विषय में सङ्कोच भी हुआ। परन्तु, विद्यार्थियों के आग्रह तथा उनकी सेवा की पवित्र प्रेरणा से हमने इस कर्तव्य को पालन करने का साहस किया है। इसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठकों के ही हाथ है। परन्तु, निबन्ध को दिशा दिखाने और पवित्र भावों को उभाड़ने में यदि हम पुस्तक के द्वारा हम से कुछ भी सेवा हो सकी हो, तो हम अपने को धन्य मानेंगे।

गः फूलचन्द्र शर्मा

# निबन्धादर्श

विचार-भाग

## १—प्रवेश

वाणी हमारे हृदय-कमल की सौरभ है। हमारे मनरूपी कृष्ण की मुरली है। उसकी स्वर-लहरी में विश्व-संगीत का सन्देश गूँज रहा है। यह हमारे मुख-मण्डल की आभा; हमारे भाव-मानस की कल-हंसिनी है। नीर-क्षीर का विवेक यही करती और हमारे गुण-अवगुण की परख पर विचरती है। मानव-जाति की भाषा के रूप में यही हमारी सभ्यता तथा संस्कृति की जननी है। इसका उज्ज्वल वेश और विकसित वदन ही हमारा खेद तथा मोद है।

हमारे मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन वाणी ही है। इसलिए हमें संसार के सामने अपने को अपने निर्मल रूप में रखने के लिए वाणी की निर्मलता तथा मधुरता का महत्व समझ लेना चाहिए। जो शब्द हमारे मुख से निकलते हैं, उन्हीं से लोग अनुमान करते हैं कि हम क्या हैं और कैसे हैं उन्हीं से हमारा

और बड़े-बड़े काम करती है तथा बिना शुभ साधनों के वही कुण्ठित होकर निकम्मी हो जाती है।

प्रकृति का अटल नियम है कि वह जीवमात्र को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाती है, अर्थात् हम जो कुछ जानते हैं, उसी के सहारे से वह हमें अनजानी बातों का बोध कराती है। यही नैसर्गिक नियम, निबन्ध लिखना सीखने की कुञ्जी है। बच्चा जब पैदा होता है, तब वह बोलना नहीं जानता और न अपनी दृष्टि ही किसी एक पदार्थ पर जमा सकता है। संसार में आँख खोलते ही वह चकित होकर इधर उधर देखता है। समय बीतने पर धीरे-धीरे सब कुछ सीख लेता है। ठीक यही दशा नौसिखिये लेखक की होती है। निबन्ध लिखना सीख लेना एक दिन का काम नहीं। भाषा मँजते-मँजते ही मँजती है और भाव उठते-उठते ही उठते हैं। परन्तु यदि हमारे ज्ञानार्जन के द्वार—हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ—सचेत रहें, तो हमारा ज्ञान-भण्डार स्वाभाविक रूप से ही बहुत कुछ बढ़ता रहता है।

### १—ज्ञानेन्द्रियाँ

निबन्ध की सामग्री जुटाने का सबसे पहला साधन हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जो जन्म से ही हमारा साथ देती हैं, उनमें भी आँख सब से प्रधान है। आँख के ही द्वारा हम प्रकृति के अनन्त-सौन्दर्य का अवलोकन करते, उसे हृदय में बिठाते और मस्तिष्क के तन्तुओं द्वारा उसका प्रभाव स्मरण-शक्ति को सौंपते हैं।

सुनना, सूँघना, चखना और छूना भी अनेक प्रकार से हमें पदार्थों का गुण-बोध कराते हैं। इसलिए, प्रतिक्षण हमारी आँखें खुली हुई रहें, अर्थात् हमें सूक्ष्म निरीक्षण करने का, बारीकी से देखने का स्वभाव पड़ जाय, तो हमारे हृदय-पट पर बाहरी जगत् का जो चित्र बनेगा, वह बहुत स्पष्ट होगा। जब तक हमें स्वयं किसी बात का स्पष्ट बोध न हो, हम दूसरे को किस प्रकार समझा सकते हैं ? इस प्रकार बारीकी से देखने से हमारा ध्यान भी एक ओर लगा रहता है और हमारी मेधा ( धारणावती बुद्धि ) भी विकसित होती है। जब तक हम ध्यानपूर्वक किसी पदार्थ का सूक्ष्म निरीक्षण न करें, हमारे लिए उसका पूरा ज्ञान होना असम्भव है।

२—भ्रमण

बाहरी जगत् को हम जितना अधिक देखें-भालेंगे, उतना ही अधिक हमारे ज्ञान का गोला बढ़ता जायगा—उसकी परिधि में भिन्न-भिन्न विषयों का समावेश होता जायगा। इसलिए पर्यटन करना ज्ञानार्जन का दूसरा परमावश्यक साधन है। स्थान-स्थान में घूमने-फिरने से हमारे ज्ञान-कोष में जो-जो नई बातें बढ़ती हैं, वे हमारी निज की प्राप्त की हुई होती हैं। उनके लिए पुस्तक पढ़ने, अथवा गुरु की सेवा में समय बिताने की आवश्यकता नहीं होती। बीच का यह समय बचने के साथ-साथ उन बातों का प्रभाव भी हमारी स्मरण-शक्ति पर चिर-स्थिर रहता है। हम

पदार्थों के रूप को ज्यों का त्यों समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए; जिस मनुष्य ने कभी पहाड़ अथवा समुद्र नहीं देखा है, उसे अनेक नमूने दिखाने तथा सरल से सरल ढंग से समझाने पर भी उनका यथार्थ बोध नहीं हो सकता। हिम से ढकी हुई और आकाश को छूती हुई तथा नीले-नीले गगन में शान्त भाव से खड़ी हुई ऊँची-ऊँची चोटियों, अथवा कल-कल-ध्वनि करके आलिङ्गन-सा करती हुई कोमल, लोल लहरों तथा ऊँची उठती हुई सरल तरङ्गों का आभास केवल कानों द्वारा किस प्रकार हो सकता है ? वह आँख ही का काम है। अन्य बहुत से दृश्य तो ऐसे होते हैं कि उनका सम्बन्ध देखने ही से है; वे वर्णन से परे हैं। वहाँ तो "गिरा अनयन नयन बिनु बानी", ही कहना पड़ता है। सच तो यह है कि पर्यटन करने से जो सहायता हमारे भावों के विकास और कल्पना की उड़ान को मिलती है, वह और किसी तरह मिल नहीं सकती। इस व्यावहारिक ज्ञान द्वारा हमारा अनुभव दिन पर दिन पुष्ट होता और विस्तार पाता जाता है। हमें निरीक्षण करने के एक से एक अनूठे अवसर प्राप्त होते हैं। हृदय में आनन्द की हिलोरें उठतीं और हमारा जीवन सुखमय बनाती हैं। सांसारिक पदार्थों का जीता जागता चित्र हमारे सामने खड़ा हो जाता और सूक्ष्म-निरीक्षण के द्वारा जीवन-रहस्य के पट भी हमारी आँखों के सामने खुल जाते हैं।

## ३—स्वाध्याय

भ्रमण करने के साधन सब को सुलभ नहीं। उनके लिए धन चाहिए, अवकाश चाहिए, साहस चाहिए और चाहिए साथियों का सुयोग। परन्तु छोटी-छोटी यात्राएँ—मेले, प्रदर्शनी आदि के अवसर का उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। जिनके पास इन साधनों का अभाव अथवा कमी है, उनके लिए तीसरा साधन स्वाध्याय है। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का पढ़ना केवल उन्हींके लिए आवश्यक नहीं, जिनको कि भ्रमण करने का अवसर प्राप्त नहीं होता, वरन भ्रमण करनेवालों के लिए भी अनिवार्य-सा है। ग्रन्थों के अध्ययन से उनमें तुलना करने की शक्ति बढ़ती और अपने अधूरे निरीक्षण की पूर्ति का भी मार्ग मिलता है। भिन्न-भिन्न पहलुओं से किसी पदार्थ की जाँच-पड़ताल के नये पंथ सूझते और अपने भावों को व्यक्त करने का उत्साह उत्पन्न होता है। परन्तु स्वाध्याय के लिए भी बहुत सतर्क होकर आगे बढ़ना चाहिए। आजकल के बढ़ते हुए साहित्य के युगमें नया विद्यार्थी सहज ही यह नहीं जान सकता कि किस पुस्तक के पढ़ने में उसका हित और किसके पढ़ने में अहित है। भाषा और भावों की दृष्टि से उत्तम और अच्छा प्रभाव डालनेवाले ग्रन्थों के चुनाव में हमें आरंभ से ही किसी अच्छे गुरु की शरण में जाना होगा। यदि ऐसा गुरु हमारे माता, पिता, भाई आदि में ही कोई मिल जाय तो सौभाग्य ही समझिए, नहीं तो बड़ी सावधानी के साथ

उसकी खोज करनी चाहिए। स्मरण रखिए, स्वार्थी और निकम्मे लेखकों ने साहित्य सुरसरी को भी गन्दा करने की चेष्टा में कमी नहीं की है। ऐसे लोलुप लेखकों की दृष्टि में साहित्यिक पवित्रता का कुछ मूल्य नहीं। अबोध विद्यार्थियों की पवित्र भाव-भूमि में गन्दे और गले-सड़े बीज बोते उन्हें लज्जा नहीं आती। इसलिए शुद्ध साहित्य का पढ़ना अपना परम कर्त्तव्य समझिए। भूलकर भी गन्दा साहित्य हाथ में न आने दीजिए। उसे महा-विष समझ कर छोड़ दीजिए। संसार के महापुरुषों के जीवन-चरित, सभ्य और उन्नत जातियों के गौरव-पूर्ण तथा उदार इतिहास और वीर-गाथाएँ, सच्चे और स्वास्थ्य-प्रद सुन्दर वर्णन तथा यात्रा-वृत्तान्त और वैज्ञानिक लेख पढ़िए। इन्हीं के द्वारा धीरे-धीरे आप स्वयं शुद्ध और अशुद्ध की पहिचान करने लगेंगे। ग्रन्थावलोकन का स्वभाव बनाइए और अपनी शङ्काओं का किसी सच्चे गुरु के चरणों पर सिर रखकर निवारण कीजिए। निर्मल निरीक्षण के बल से अपने पढ़े हुए ग्रन्थों में सार वस्तु का ग्रहण कीजिए और मनोयोग के साथ गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कीजिए। केवल किताबों के कीड़े न बनिए।

अपने दैनिक जीवन में भी इस बात का ध्यान रखिए कि आप जिस प्रकार के वायु-मण्डल में विचरते हैं, वह पवित्र हो। आपकी सङ्गति आपकी बैठक उठक और आपके सभा-सम्मेलन ये सब आपके भाव और भाषा पर अपना प्रभाव डालते हैं

दोषों से दूर हटना और गुणों का ग्रहण करना, अथवा दूषित भाषा का परित्याग और साधु भाषा से अनुराग, आपके अपने नैतिक बल पर निर्भर है। सामाजिक संस्कार और आचारिक व्यवहार, हमारे शिष्टाचार-सम्बन्धी भावों को ढालनेवाले साँचे होते हैं। इसलिए ये संस्कार भी यों ही नहीं छोड़े जा सकते। आपकी रचनाओं में इन भावों की रेखाएँ भी प्रतिलक्षित होती हैं।

## ३—भाषा और उसका साहित्यिक रूप

भाषा भावों की ध्वनिमयी मूर्ति है। भाव उसका प्राण है। अथवा भाषा अखिल विश्व की हृत्तन्त्री की झङ्कार है। विश्व के हृदय की गति के साथ-साथ भाषा की गति-विधि में भी उसीके अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। उच्चारण की सुविधा, नये-नये आविष्कार, सामाजिक हेलमेल का विस्तार, परिवर्तित रुचि और नवीनता का प्रेम इत्यादि के कारण भाषा का स्वरूप सदैव नया रूप धारण करता रहता है। फिर कभी-कभी ऐसा युग भी आता है कि कोई प्रभावशाली लेखक अथवा एक लेखक-मण्डल अपनी लेखनी के चमत्कार से भाषा के प्रवाह को एक नई दिशा में बहा देता है। इस प्रकार युग-विशेष में भाषा भी अपना विशेष रूप रखती है, जिसका अध्ययन लेखक का कर्तव्य है।

भाषा के साहित्यिक, सांवादिक और ग्राम्य स्वरूप का अन्तर जान लेना भी कम आवश्यक नहीं। साहित्यिक स्वरूप वह है, जिसका प्रयोग उच्चकोटि के लेखक करते हों। सांवादिक स्वरूप वह है, *जिसका प्रयोग शिक्षित-समाज द्वारा बोलचाल में किया* जाय और ग्राम्य स्वरूप वह है जिसमें अशिक्षित जनता अपने भाव प्रकट करे। सुलेखकों का आदर्श साहित्यिक भाषा ही होती है।

अब हमें साहित्यिक स्वरूप के शब्दों, वाक्यों, परिच्छेदों (Paragraphs) और निबन्ध अथवा रचना के आवश्यक अङ्गों की ओर भी एक दृष्टि डाललेना चाहिए।

### शब्द

*शब्द की शक्ति के विषय में हम पहले लिख चुके हैं।* वही शब्द लेखक का शस्त्र है। उसका कुशल प्रयोग न जानने से कोई लेखक लक्ष्य-भेद नहीं कर सकता। यों तो एक ही अर्थ के बतानेवाले अनेक शब्द होते हैं, परन्तु प्रत्येक शब्द की आत्मा अलग है। उसकी पहिचान के बिना शब्द का प्रयोग ठीक-ठीक नहीं हो सकता। जैसे; मेघ, पायोधर, बादल, वारिवाह, धाराधर ये शब्द एक ही अर्थ के बाचक हैं। परन्तु 'धाराधर' कहने से मानों मूसलाधार मेंह की झड़ी का दृश्य सामने आ जाता है, तो 'वारिवाह' से हवा में उड़ते हुए रुई के गोलों के सदृश मेघों की दौड़ आँखों के आगे दौड़ लगा जाती है। 'पायोधर' से प्यासे

पपीहे की भाँति आँखें ऊपर को उचकने लगती हैं, तो 'बादल से घुमड़ती हुई घटाओं के दल-बादल उमड़े चले आते हैं। 'मेघ' में एक प्रकार की गम्भीरता छिपी हुई है। इसी प्रकार प्रत्येक शब्द भाव की किसी विशेष बारीकी की ओर सङ्केत करता है। कुशल लेखक शब्दों की इस कोमलता का सदैव ध्यान रखता है। स्मरण रखिए—

"जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध हैं, उसी प्रकार शब्द भी; ये सब एक ही विराट् परिवार के प्राणी हैं। इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग जान लेना ; कहाँ कब एक की साड़ी का छोर उड़कर दूसरे का हृदय रोमाञ्चित कर देता ; कैसे एक की ईर्ष्या अथवा क्रोध दूसरे का विनाश करता, कैसे फिर दूसरा बदला लेता, कैसे ये गले लगते, बिछुड़ते ; कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे की मृत्यु से शोकाकुल होते—इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है ?"

[ 'पल्लव' में ]

शब्दों की यह वंशोत्पत्ति स्वाध्याय और अभ्यास से ही धीरे-धीरे जानी जाती है। आरम्भ में विद्यार्थी को चाहिए कि वह सुलेखकों की भाषा में इस बात को ध्यानपूर्वक देखता जाय कि वे किस अवसर पर किस शब्द का प्रयोग करते हैं। शिष्ट-

समाज मे बातचीत सुनते समय भी वह शब्दों का ठीक-ठीक प्रयोग सीखने की चेष्टा करे।

### वाक्य

जब शब्दों का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय, तभी से वाक्य-रचना की शुद्धता और सुन्दरता की ओर रुचि उत्पन्न होनी चाहिए। वाक्य-योजना मे नीचे लिखी हुई बातें ध्यान देने योग्य हैं —

( १ ) व्याकरण की स्पष्टता—पहली बार पढ़ते ही वाक्य की व्याकरण-सम्बन्धी रचना स्पष्ट समझ में आ जाय।

( २ ) विस्तार—वाक्यों का विस्तार विविध प्रकार का होना चाहिए। कोई वाक्य बहुत लम्बा तो कभी न हो और बहुत छोटा भी बहुत कम।

वाक्य बहुत लम्बा होने से भाँति की वही दशा हो जाती है जो किसी चित्रशाला में जल्दी-जल्दी चक्कर लगाने वाले व्यक्ति की होती है। उसकी दृष्टि एक चित्र से दूसरे पर शीघ्र ही पहुँच जाती है, और किसी का भी पूर्णभाव वह नहीं समझ सकता। इसके विपरीत, ठहर-ठहर कर चलने से वह अपना ध्यान प्रत्येक चित्र पर जमा सकता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे वाक्यों से लेखक के अर्थ की स्पष्टता का बोध शीघ्र हो जाता है। लम्बे-लम्बे वाक्यों मे प्रायः व्याकरण की भूलें भी हो जाने की सम्भावना रहती है।

और पाठक का चित्त शब्दाडम्बर में ऐसा उलझ जाता है कि वह एक शब्द से दूसरे पर जाने की धुन में लेखक के अर्थ को भूल ही सा जाता है।

( ३ ) आश्रित वाक्य-खण्ड—किसी वाक्य में जोड़े हुए अन्य वाक्य-खण्ड उसे बोझिल तथा शिथिल बनाने के कारण होते हैं। इसलिए वे, जहाँ आवश्यक हों, प्रधान वाक्य में इस प्रकार गूंथे जायँ कि जब तक सम्पूर्ण वाक्य समाप्त न हो जाय, उसका व्याकरण-सम्बन्ध पूरा न हो।

( ४ ) संतोलन—लम्बे वाक्यों की रचना में, जहाँ सम्भव हो, उनके अंग-अंग में ऐसी अनुरूपता हो कि प्रत्येक वाक्य उचित रूप से नपा तुला जान पड़े। एक अंग भारी और दूसरा हलका होने से वह लड़खड़ाता हुआ न दिखाई दे।

( ५ ) एकता—एक वाक्य में केवल एक ही विचार व्यक्त किया जाय, उससे विभिन्न और कोई भाव न आने पावे।

( ६ ) क्रम—साधारणतया व्याकरण के नियमों का पालन किया जाय, किन्तु जहाँ आवश्यक हो वहाँ परिवर्तन भी कर दिया जाय, जिससे कि सबसे प्रधान शब्द वाक्य के आदि वा अन्त में रखे जा सकें।

( ७ ) अन्वय या सङ्गति—जहाँ विशेषण, व्याख्या अथवा परिणाम-सूचक वाक्य-खण्ड प्रधान वाक्य में जोड़े जायँ, वहाँ वे समुचित संयोजक शब्दों द्वारा मिलाये जायँ।

टिकी रहती है। वह भाव जितने निर्मल स्रोत से निकलेगा, जितनी अबाध गति से वह बहेगा, जितनी अधिक स्वाभाविकता उसमें होगी, रचना की स्रोतस्विनी नदी उतनी ही मनोहारिणी और सुरम्य होगी। संक्षेपतः उसके विचारणीय अंग ये हैं :—

( १ ) एकता—समष्टि रूप से रचना में एक ही प्रमुख भाव होना चाहिए जो उसके अंग-अंग में व्याप्त हो। यह भाव आरम्भ ही में व्यक्त कर देना अच्छा है।

( २ ) विश्लेषण—इस प्रमुख भाव का विश्लेषण ( अंगों को अलग-अलग करके दिखाना ) वैज्ञानिक रीति से उसके अंगों और उपाङ्गों में होना चाहिए, जिससे रचना के भीतरी भागों में उनका पृथक् विचार किया जा सके। जैसे : किसी ग्रन्थके सर्ग, सोपान, अध्याय, पाठ, प्रकरण आदि।

( ३ ) सङ्कलन—इन अलग अलग भागों को ऐसे क्रम से रखा जाय कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट हो और वे सम्पूर्ण रचना से सु-सम्बद्ध हों। जैसे ; किसी विशाल भवन के दरवाजे, खिड़की, बरामदे, छज्जे, कँगूरे आदि।

रचना हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति है। उसे विविध रीतियों से व्यक्त कर सकते हैं, तो भी उसके दो मुख्य भेद हैं, (१) गद्य (२) पद्य। गद्य में व्याकरण के वाक्य-रचना सम्बन्धी नियमों के अनुसार शब्दों का स्वाभाविक क्रम रहता है और

पद्य में लय-प्रधान अलंकृत क्रम होता है। गद्य सामान्य वार्तालापका स्वाभाविक माध्यम है और पद्य उत्कृष्ट कल्पनाओं का।

इस पुस्तक में केवल गद्यमय रचना का ही वर्णन अभीष्ट है और उसमें भी विशेषकर पाठशाला सम्बन्धी निबन्धों का। इसलिए गद्य के भेदों पर विचार करने के पूर्व रचना के विषय पर भी थोड़ा-सा विचार कर लेना अनावश्यक न होगा।

## ४–विषय

निबन्ध के विषय की सीमा और लेखक की शक्ति, दोनों में जबतक सामञ्जस्य न हो, तबतक लेख अच्छा नहीं हो सकता। आरम्भिक लेखक के लिए छोटे-छोटे वर्णन सरल और सीधी भाषा में लिखना ही बहुत है। यदि उसे दया, साहस, क्रोध आदि विषय लिखने के लिए दिये जायँ, तो उसका मन ऐसे सूक्ष्म विषयों से ऊब जायगा और वह लेख लिखने को बड़ा कठिन काम समझने लगेगा। इसलिए निबन्ध लिखने का आरम्भ नित्य प्रति की देखी हुई वस्तुओं के वर्णन और छोटी-छोटी रोचक कहानियों के दुहराने तथा लेखन से होना स्वाभाविक और सुन्दर है। बचपन से इस प्रकार का अभ्यास डालना मानो खेल खेल में लेख लिखना सिखाना है। आगे चलकर लेख में बल लाना, शब्दों को समास रूप में व्यक्त करना, भाषा में अलंकार लाना आदि गुण अभिवर्धन के साथ साथ अपने आप आते जाते हैं

प्रत्येक विषय की एक सीमा होनी चाहिए। उस सीमा की परिधि को अच्छी तरह देखकर और अपनी शक्ति को तौलकर ही लेखनी उठानी चाहिए। जैसे ; 'मेला' विषय पर जो लेख होगा, उसमें मेलों का इतिहास, उनका प्राचीन तथा आधुनिक रूप, धार्मिक सम्बन्ध आदि अनेक बातें आ जायँगी। परन्तु रामलीला का मेला' अथवा 'अलीगढ़ की रामलीला का मेला' किंवा 'सरयू-तरण का दृश्य' इन लेखों में विषय सीमित तथा परिसीमित हो जायगा और उसका लिखना सुकर होगा। लेखक की कक्षा तथा योग्यता के अनुसार ही निबन्ध की सीमा निर्धारित कर लेना उचित है।

## ५—निबन्ध-भेद

यों तो ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, तुलनात्मक, वर्णनात्मक आदि अनेक प्रबन्ध-भेद कहे जा सकते हैं। जिस दृष्टिकोण से किसी विषय-विशेष को लिखा जाय, उसी उद्देश-विशेष से उसे एक अलग नाम दिया जा सकता है। परन्तु, साधारणतया निबन्ध में चार बातें प्रधान होती हैं,—वर्णन, कथा, व्याख्या और तर्क। इन्हीं चारों के आधार पर निबन्ध के मुख्य चार भेद किये जाते हैं, वर्णनात्मक, कथात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक। अन्य-अन्य प्रकार के निबन्धों का समावेश किसी न किसी रूप में इन्हीं के अन्तर्गत हो जाता है।

## वर्णन

वर्णन में लेखक का उद्देश यह रहता है कि वह उस दृश्य को, जो कि उसकी आँखों अथवा मस्तिष्क में घूम रहा है, शब्दों में निकाल कर रख दे। साधारणतया किसी दृश्य पदार्थ का निरूपण करना वर्णन कहा जाता है, परन्तु इसमें यात्राएँ दैनिक वृत्त (Diaries), उपन्यास आदि की भी गणना है। और अवसर-अवसर पर तो सभी प्रकार के निबन्धों—विशेषकर पद्य—में इसका उपयोग होता है। आगे चलकर वे विषय भी इसमें आते हैं, जिनका सम्बन्ध बुद्धि तथा भावनाओं से है।

## वर्णन के अङ्ग

उच्च कोटि के लेखकों के वर्णन में ये बातें पाई जाती हैं,—(१) स्थूल वर्णन (२) विस्तार (३) विविध विचार-कोण (४) संगत भाव (५) प्रस्ताव।

(१) स्थूल वर्णन (Outline)—प्रायः लेखक वर्णनीय विषय की एक व्यापक बाह्य रेखा बनाकर लेख आरम्भ करता है।

(२) विस्तार (Details)—इसके पश्चात् वह पृथक्-पृथक् भागों का सविस्तर वर्णन करता है। इसमें वह इस बात का ध्यान रखता है कि जो बात जितनी अधिक प्रधान हो, उस पर उतना ही अधिक मन रहे।

(३) विचार-कोण (Points of view)—कभी-कभी समस्त वर्णन का और भी अधिक व्यापक रूप दिखाने के लिए वह उसे भिन्न-भिन्न पहलुओं से वर्णन करता है।

(४) संगत भाव (Associated ideas)—वर्णन को अधिक रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए वह अन्य विचारों तथा उद्धरणों से उसका स्पष्टीकरण करता है।

(५) प्रस्ताव (Suggestions)—सभी पाठकों की रुचि एक-सी नहीं होती, इसलिए लेखक कभी-कभी भाव का विकास न करके केवल उसका प्रस्ताव कर देता है। पाठक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसकी पूर्ति करते रहें।

## कथा

कथा में लेखक का उद्देश यह रहता है कि वह क्रमागत, वास्तविक अथवा काल्पनिक घटनाओं के अनुरूप एक क्रमबद्ध विचार-माला प्रकट करे। कथा के उदाहरण पुराणों, इतिहासों, जीवनचरितों तथा उपन्यासों में पाये जाते हैं।

वर्णन और कथा का अन्तर जानने के लिए यों समझना चाहिए कि वर्णन यदि चित्रलेखन से मिलता है, तो कथा सिनेमा (चलते-फिरते चित्र-प्रदर्शन) के अनुरूप है। चित्र एक साथ ही अपने सब अङ्गों की सुन्दरता देखनेवाले के सामने रख देता है और सिनेमा में चित्रों का ऐसा तार बँध जाता है कि एक के

पीछे दूसरे चित्र की संचालन-क्रिया से एक पूरी घटना मौन-भाषा में व्यक्त हो जाती है।

### कथा के अङ्ग

कथा की उत्तम रचनाओं में ये बातें पाई जाती हैं,—(१) घटनाक्रम (२) कारण और कार्य (३) दृष्टान्त (४) संक्षेप वा सार (५) आलोचना।

(१) घटना-क्रम (Order of events)—कथा में काल और क्रम के अनुसार घटनाओं का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए।

(२) कारण और कार्य (Cause and effect)—घटनाओं और उनके कारणों का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए।

(३) दृष्टान्त (Illustrations)—जहाँ कथा-वर्णन में कोई आकस्मिक परिवर्तन हो, जिसका समझना पाठक के लिए कठिन जान पड़े, वहाँ मिलती-जुलती घटनाओं का दृष्टान्त दे देना चाहिए।

(४) संक्षेप (Summaries)—अच्छे लेखक प्रायः कथा के प्रत्येक खण्ड के अन्त में उसका सार दे देते हैं। इससे पाठक की स्मरण-शक्ति का बोझ हलका हो जाता है और उसे पिछले भाग का, जिसके साथ कि आगे का भाग मिलाना है, स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

(५) आलोचना ( Criticism )—जहाँ वर्णनीय घटनाओं के बड़े बड़े पात्रों का विषय आता है, वहाँ लेखकों को उनका

चरित्र-चित्रण आवश्यक जान पड़ता है और उनके कार्यों तथा हेतुओं की आलोचना लाभप्रद सिद्ध होती है।

## व्याख्या

व्याख्या में लेखक का उद्देश्य वैज्ञानिक रीति से ज्ञान कराना है। इसका सिद्धान्त ज्ञात की ओर से अज्ञात की ओर बढ़ना है। यही रीति शिक्षा देने में काम लाई जाती है। व्याख्या में प्रायः अमूर्त वा व्यापक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। जैसे ; दया, क्षमा, शिक्षा आदि।

## व्याख्या के अङ्ग

वैज्ञानिक रचनाओं में ये बातें पाई जाती हैं—(१) मूलतत्वों की स्थापना, (२) लक्षण वा परिभाषा, (३) विवेचन, (४) पर्य्यालोचन।

(१) मूलतत्वों की स्थापना (A Foundation of Facts) विज्ञान की प्रत्येक शाखा कुछ मूल-तत्वों पर निर्भर रहती है, जो कि मानव-समाज के निरीक्षणों तथा अनुभवों से प्राप्त होते हैं।

(२) परिभाषा (Definition)—किसी पदार्थ—उसकी क्षमता; उसकी प्रक्रिया आदि—के बताने के लिए पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता होती है। परन्तु, उन शब्दों का—व्याख्या में प्रयोग करने के पूर्व उनकी परिभाषा का ज्ञान करा देना चाहिए, जिससे पाठक लेखक के अभिप्राय को समझ जाय।

(३) विवेचन (Induction)—प्राकृतिक नियमों की खोज के लिए उन वैज्ञानिक तत्वों के अलग अलग विभाग तथा तुलना करना जो उन नियमों के ही द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(४) पर्य्यालोचन (Deduction)—स्थापित या निश्चित नियमों का विशेष अवस्थाओं में प्रयोग करना।

यही वैज्ञानिक प्रणाली धार्मिक, आचारिक, सामाजिक आदि निबन्धों की व्याख्या में भी प्रयुक्त करनी चाहिए। पहले उनके मूलतत्वों को ढूँढ़ा जाय, फिर पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान कराया जाय। इसके पश्चात् विवेचन और पर्य्यालोचन से विषय को स्पष्ट किया जाय।

## तर्क

तर्क में लेखक का उद्देश दूसरों के विश्वास, या व्यवहार पर प्रभाव डालने का प्रयत्न होता है। इसके प्रधान क्षेत्र समाचार, धर्म, राजनीति आदि हैं। कथित भाषण भी इसीमें सम्मिलित हैं। इसके दो सर्वोत्तम शस्त्र हैं—युक्ति और प्रबोधन।

## तर्क के अङ्ग

तार्किक निबन्धों में इन बातों से लेखक की ज्ञान-सीमा का परिचय मिलता है—(१) विषय (२) युक्ति-विन्यास (३) प्रबोधन-[illegible]

(१) विषय (Theme)—यह आवश्यक है कि लेखक को विषय के स्थूल सिद्धान्तों, विस्तार की विशेषताओं तथा मुख्य-मुख्य पहलुओं का परिज्ञान हो। पाठकों या श्रोताओं का मनोयोग स्थिर रखने तथा उत्साह उत्पन्न करने के लिए ये बातें बहुत ही आवश्यक हैं।

(२) युक्ति-विधान (The Methods of Logic)—पाठकों (विशेषकर विपक्षी तथा आलोचनात्मक) को अपनी बात मनवाने के लिए लेखक को न्याय-संगत युक्तियाँ देनी चाहिए। विवेचन, पर्य्यालोचन, सादृश्य आदि सभी ढंग काम में लाने चाहिए, जिससे कि अपने मत का प्रतिपादन और विपक्षी मत का खण्डन हो।

(३) प्रबोधन-चातुर्य (The Devices of Persuation)—जिस प्रकार युक्ति का प्रभाव बुद्धि पर पड़ता है, उसी प्रकार प्रबोधन का भावनाओं पर। इसलिए चतुर लेखक या वक्ता, दोनों का प्रयोग करता है। वह पाठकों या श्रोताओं की मनोवृत्तियों को हिलाता और भावों को उभारता है, जिससे कि उनका प्रेम, घृणा, साहस, भय, सहानुभूति, विरोध और कभी-कभी उनकी धार्मिक, आचारिक और देशाभिमान की भावनाएँ भी लेखक की ओर खिंच आती हैं।

## ६—शैली (Style)

लिखने का ढंग शैली कहलाता है। कोई लेखक किस प्रकार अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, यही बात उनकी

शैली में देखने की होती है निबन्ध का सर्वस्व शैली ही है। जिस प्रकार,

'सदन, नयन, मुख, नासिका, सब के एकइ ठौर।
रहनि, सहनि, चितवनि, चलनि, चतुरन की कछु और ॥'

उसी प्रकार एक ही बात कुशल लेखक की शैली में अन्यों की अपेक्षा कुछ और ही हो जाती है। शैली ही लेखक के कौशल का प्रकाश है। उसमें लेखक के संस्कार, चरित्र, विचार आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। खिले हुए फूल की भाँति उसमें लेखक के हृदय-कुसुम के कोमल अङ्ग अलग-अलग दिखाई देते हैं। उसीमें से उसके चरित्र की भीनी-भीनी सुगन्ध पाठकों के मन पर अपनी मोहनी डालती है। इसलिए आरम्भ से ही शैली *के विकास में बड़ी सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है।* अच्छे-अच्छे लेखकों का आदर्श सामने रखकर आगे बढ़ना चाहिए। नदी की मुक्त-धारा की भाँति उसमें हमारी ध्वनि और गति एक होकर बहती हुई दिखाई दे।

शब्दों, विचारों के प्रकाशन तथा वाक्य-रचना की दृष्टि से शैली कई प्रकार की होती है।

### १–शब्द-प्रधान

किसी भाव के अभिव्यक्त करने में शब्दों की जितनी संख्या से काम लिया जाता है, उसके विचार से शैली के तीन भेद हैं— (१) वाग्बहुल ( [illegible] ) जिसमें शब्दों की अत्यधिकता पाई

जाती है। (२) संक्षिप्त ( Concise ), जिसमें थोड़े शब्दों से काम लिया जाता है। (३) निर्दिष्ट ( Precise ), जिसमें न तो शब्द बहुत अधिक होते हैं, न बहुत कम।

## २–विचार-प्रधान

विचारों के प्रकाशन में जिस ढंग से चुनाव किया जाता है उसमें शैली के दो रूप होते हैं,—(१ अलंकृत (Ornate) जिसमें अलङ्कारमयी अथवा चित्र विचित्र भाषा का प्रयोग किया जाय (२) सुबोध (Plain), जिसमें भाषा सरल हो।

## ३–रचना-प्रधान

वाक्य-रचना की दृष्टि से भी शैली के दो भाग हैं—(१) धारा-वाही (Flowing), जिसमें शब्दों का अन्वय सरल हो। (२) जटिल (involved), जिसमें शब्दों का अन्वय निजित हो।

इन मोटे-मोटे भेदों के अतिरिक्त शैली के लक्षण-विशेष के अनुसार उसका कोई भी विशेष नाम रक्खा जा सकता है। जैसे: (१) सरूपक, जिसमें रूपकों की बहुलता हो। (२) विशेषणात्मक, जिसमें विशेषणों का प्रयोग अधिक हो। (३) छन्नपद, जिसमें भावों का पूर्ण प्रकाश न हो। (४) शब्दस्फीत ( Bombastic ), जिसमें साधारण, सरल शब्दों की अपेक्षा ऐसे शब्द अधिक प्रयुक्त हों जिनका स्वर बहुत ऊँचा हो। (५) सम व कटु, जिसमें कटुता का आभास हो (६ स्पष्ट, जिसमें स्पष्ट अर्थों में सार समस्त

जाय। अर्थ-विरोधिनी, जिसमें एक विचार को साधने के लिए उसके विरोधी विचार रखे जायँ।

### आलोचनात्मक दृष्टि

किसी ग्रन्थ की शैली की परीक्षा के लिए इन बातों पर ध्यान रखना चाहिए—(१) उस समय की भाषा की अवस्था, (२) ग्रन्थ के रचनाकाल तक का उस विषय का विकास, (३) लेखक की मौलिकता।

## ७—शैली का स्वरूप

शैली का स्वरूप इन अङ्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) विचार ( Thought ) (२) कथन ( Expression ) (३) अनुभूति (Feeling)।

### विचार

विचार के मुख्य गुण हैं,—(१) सरलता ( Simplicity ), (२) स्पष्टता ( Clearness ), (३) आरोहण ( Range )

#### १—सरलता

सरल विचार-शैली में ये बातें पाई जाती हैं —

( १ ) भाव सरलता से समझ लिये जाते हैं ; क्योंकि इसमें शब्दों की बोधगम्यता पर पूर्ण विचार रखा जाता है।

( २ ) अमूर्त या भाव-सम्बद्ध उदाहरणों के स्थान में प्रायः मूर्त या प्रत्यक्ष उदाहरण लिये जाते हैं।

(३) सामान्य व्यापक कथनों को छोड़कर विशेषार्थ-बोधक कथन को प्रधानता दी जाती है। जैसे; खेल तमाशा के स्थान में थियेटर, सरकस, झूला, कुश्ती आदि।

(४) लुप्तपद और संक्षिप्त प्रयोग काम में नहीं लाये जाते।

२—स्पष्टता

स्पष्ट शैली में ये बातें पाई जाती हैं :—

(१) साधारणतया शब्द उनके सामान्य अर्थों में ही प्रयुक्त किये जाते हैं, यदि उनका अन्यथा प्रयोग किया जाता है तो प्रसंग में असामान्य अर्थ के सम्बन्ध में कुछ संकेत रहता है।

(२) जहाँ शब्दों के कई अर्थ होते हैं, वहाँ एक परिच्छेद-विशेष में केवल एक ही अर्थ प्रयुक्त किया जाता है।

(३) कोई असंगत कथन नहीं होता, जिससे कि विचारों की अस्पष्टता सूचित हो।

(४) प्रमुख विचारों को ओजस्विता के साथ और पहले रखा जाता है और उनके आश्रित अन्य विचार यथास्थान लाये जाते हैं।

(५) एक विचार से दूसरे विचार में उचित संक्रमण होता है।

३—मनोहरता

[illegible] मनोहरता में ये बातें पाई जाती हैं :—

(१) विचार, विषय के अनुरूप होते हैं।

( २ ) अब तक किसी विषय में जो कुछ जाना जा चुका है। उस ज्ञान से काम लिया जाता है। इसे युग-गत (Up-todate) ज्ञान कहते हैं।

### कथन

कथन के गुण ये हैं—(१) रुचि ( Choice ), (२) अनुक्रम (Order), (३) स्वर-मधुरता ( Melody ), (४) यथार्थता (Appropriateness)।

#### १—रुचि

जहाँ कथन में रुचि होती है, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं :—

( १ ) लेखक अपना अभिप्राय पाठकों पर प्रकट करने के लिए चुने हुए शब्दों तथा पदों का व्यवहार करता है।

( २ ) अव्यवहृत शब्दों तथा अति प्राचीन—जो प्रचलित न हों—कथनों का प्रयोग नहीं किया जाता।

( ३ ) ग्राम्यता वा अश्लीलता से बचाव रखा जाता है।

( ४ ) व्याकरण की प्रचलित अशुद्धियाँ नहीं पाई जातीं।

#### २—अनुक्रम

जहाँ कथन में अनुक्रम हो, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं :—

( १ ) पाठक, वाक्यों, वाक्य-खण्डों तथा परिच्छेदों के अन्वय को तुरन्त समझ लेता।

( २ ) शब्दों का अनुक्रम हिन्दी-ढंग का ही होता है, अथवा इँग्लिश का अनुकरण नहीं।

३—स्वर-मधुरता

जहाँ भाषा श्रुति-मधुर होती है, वहाँ कानों तथा मस्तिष्क को अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार के कथन में ये बातें पाई जाती हैं—

( १ ) कर्कश-स्वर-वाले शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता।

( २ ) दो ऐसे शब्द साथ-साथ नहीं प्रयुक्त किये जाते, जिन से कि अरोचकता उत्पन्न हो।

( ३ ) उन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका कि स्वराघात एक दूसरे से तुरत मेल खा जाय।

( ४ ) कथन में इतनी विविधता होती है कि एकरसता दूर रहे।

४—यथार्थता

जहाँ कथन विचार के अनुरूप होता है, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं:—

( १ ) सरल भाव सरल शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं।

( २ ) परिवर्धित विचार ऐसी पारिभाषिक भाषा में व्यक्त किये जाते हैं, जो सहज ही में समझी जा सके।

( ३ ) उदात्त विचार मानों स्वतः उत्कृष्ट भाषा में व्यक्त होते हैं।

( ४ ) क्रिया का वेग छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग द्वारा प्रभावित होता है।

(५) वर्णनात्मक पदों में ध्वनि, गति तथा आकार आदि को व्यक्त करने के लिए उन्हींके अनुकरणशील शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे; ररक, खड़खड़, कलकल, फुङ्कार आदि।

## अनुभूति

अनुभूति में इन गुणों का समावेश रहता है,—(१) प्रवृत्ति (Passion), (२) ओज (Strength), (३) कान्ति वा मनोरमता (Charm)।

### १—प्रवृत्ति

उन रचनाओं में जो कि इन्द्रिय-वृत्ति को आकृष्ट करती हैं, ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) वे मानव-जाति, अन्य प्राणियों तथा प्रकृति के प्रति प्रेम; औरों के साथ सुख, दुःख वा सामान्य दशाओं में सहानुभूति तथा अनिवार्य विपत्ति के अवसर पर करुणा के भावों को जाग्रत् करती हैं।

(२) वे अन्याय पर क्रोध; अपमान पर रोष और महाभय में शङ्का की कठोर कल्पनाओं को उत्तेजित करती हैं।

### २—ओज

ओजस्विनी रचनाओं में ये लक्षण पाये जाते हैं:—

(१) प्रकृति के व्यापार अथवा माननीय चरितों के वर्णन, हमारे हृदय में बल की भावनाएँ भरते हैं।

( २ ) प्रकृति के रहस्य हमें उत्कृष्ट भावों की ओर ले जाते हैं।

( ३ ) जहाँ ओज की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ व्यक्त की जाती हैं, वहाँ वे ऐसे क्रम में रखी जाती हैं कि उत्तरोत्तर उत्कर्ष द्वारा पराकोटि पर पहुँच जायें।

( ४ ) जहाँ विपरीत भावनाएँ वर्णित हों, वहाँ वे इस प्रकार साथ साथ रखी जाती हैं कि स्पर्धा-विरोधिनी युक्तिद्वारा ओज की मात्रा अधिक बढ़ जाय।

( ५ ) विचारों का बल बढ़ाने के लिए अलङ्कार और रूपकों का प्रयोग किया जाता है।

२—कान्ति

कुछ रचनाओं में विशेष मनोरमत्व तथा आह्लादित करने की दुर्धर शक्ति होती है, जो इन कारणों से उत्पन्न होती है—(१) लालित्य ( Elegance ), (२) रसज्ञता ( Taste ) (३) विनोद ( Humour ), (४) चमत्कार अथवा वाक्—चातुरी ( Wit ), (५) लेखक का कोई विशेष वर्णनीय जादू।

१ लालित्य—सुललित रचनाओं में ये बातें पाई जाती हैं—

(१) माधुर्य-पूर्ण शब्दों का चुनाव।

(२) [illegible]

(३) [illegible]

२ सज्जनता—जो रचनाएँ सु-रसिकता के लिए प्रसिद्ध हैं उनमें ये गुण होते हैं :—

( १ ) धर्म और सदाचार की ओर समुचित ध्यान।

( २ ) भिन्न भिन्न कोटिके पाठकोंके विचारोंके लिए सम्मान।

( ३ ) विषम विचारों का बचाव।

( ४ ) सामाजिक प्रयोगों की पहिचान।

( ५ ) सत्य से हटानेवाली अतिशयोक्ति का अभाव।

३-विनोद—विनोदमयी रचनाएँ वे होती हैं, जो अपने अथवा औरों के दोषों तथा विफलताओं पर आनन्द देनेवाली मीठी-मीठी हँसी दिलाती हैं। वास्तविक विनोद में ये बातें देखने की हैं.

( १ ) हास्य की एक झलक हो।

( २ ) विफलता की ही ओर सङ्केत हो, व्यक्ति की ओर न हो।

( ३ ) दोषके साथ जो गुण हो, उसे भी स्वीकार किया जाय।

( ४ ) विनोद मैत्रीपूर्ण हो, शत्रुतापूर्ण न हो; उसमें अनुराग हो, वैर न हो।

( ५ ) उसमें वाक्-चातुर्य का पुट मौजूद रहे।

४—वाक्चातुरी—वाक्चातुरी की रचनाएँ वे हैं, जो औरों पर हँसी का कहकहा लगाने का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। वाक्चातुरी के ये लक्षण हैं

(१) विपरीत विचारों का विचित्र संयोग।

(२) इन विचारों पर सोचने का मौलिक ढंग।

(३) शब्दों पर श्लेष (एक ही शब्द का कई अर्थों में प्रयोग)।

(४) शब्दों की नाप-तोल अर्थात् शब्दों का अपव्यय न हो, गिने चुने शब्दों में बात हो जाय।

## ८—अलङ्कार

यों तो सहज-सुन्दर को भूषण निरर्थक हैं। यदि विचार चुभता हुआ हो, तो भाषा की सजावट से क्या? सुबोध भाषा ही भाव-प्रकाशनका स्वाभाविक ढंग है, परन्तु जिस प्रकार कभी-कभी बुनावदार साड़ियों अथवा एक दूसरे के गले लगती हुई बेलों की नयनाभिराम निकुञ्जों के दर्शन से एक निराला ही आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार भाषा में अलङ्कारों की छिटकी से इन्द्र-धनुष की-सी छटा झलकने लगती है।

भाव-प्रकाशन में सुबोध रीति का परिवर्तन ही अलङ्कार है। जहाँ क्लिष्ट भावों को शब्दों में व्यक्त करना हो, वहाँ उन्हें सुगमता-पूर्वक दिखाने के लिए अलङ्कार का प्रयोग किया जाता है और इनके साथ ही वे अधिक प्रभावशाली भी बन जाते हैं।

यहाँ हम अलङ्कार के पारिभाषिक नामों में अपने पाठकों को न उलझाकर केवल कुछ अलङ्कारिक प्रयोगों का दिग्दर्शन करा

देना ही उचित समझते हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करनी हो, वे अलङ्कारके ग्रन्थों का अवलोकन करें; क्योंकि इस विषय पर पृथक् ही अनेक ग्रन्थ हैं।

अलङ्कारों के प्रयोग में हमारे दृष्टि-कोण की असंख्य दिशाएँ हो सकती हैं, परन्तु आधार रूप से तीन बातें हैं, जिनमें सब का समावेश हो जाता है। वे ये हैं—( १ ) सरूपता वा सादृश्य ( २ ) विरोध, ( ३ ) समीपता।

### सरूपता

मिलती-जुलती बातों से किसी भाव का स्पष्ट बोध कराना व उत्कर्ष बढ़ाना सरूपता का लक्षण है। इसमें जिन पदार्थों की तुलना की जाय, उनमें समान गुणों का मिलान किया जाता है। वह गुण चाहे एक हो वा अधिक। समान गुणों की न्यूनाधिकता के विचार से इस प्रकार के अलङ्कार भी अनेक प्रकार के हो जाते हैं। जैसे;

(१) 'उसके दाँत ऐसे उज्ज्वल थे जैसे दूध'। यहाँ श्वेतता का गुण ग्रहण किया गया है, न कि एक के ठोस होने और दूसरे के पतलेपन का।

(२) 'सामदेव काला नाग है, उससे सचेत रहना'। इसमें प्रहार करने का भाव छिपा हुआ है।

(३) 'विपद् के बादलों का सामना करने के लिए शस्त्र-सज्जित रहो' इसमें दो भिन्न प्रकार के अलङ्कारों का मेल है

(३) 'छोटा-सा बीज ही बड़े बरगद का पिता है।' यहाँ शब्दों में विरोध है कि छोटे से बड़े की उत्पत्ति है।

(४) 'धर्मशीलता तव जग लागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी।' यह व्यंग्य है। यहाँ रावण की अधर्मशीलता से अभिप्राय है।

(५) 'आपकी कठोर कृपा ने ही उसे बिगाड़ा।' 'कठोर कृपा' में शब्द-विरोध है।

(६) 'धनवान् कंजूस से बढ़कर कौन दरिद्र होगा ?'

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझिए।

## समीपता

इस प्रकार के अलङ्कारों में संगत भावों से अर्थ जाना जाता है। जैसे—

(१) 'उसकी लेखनी में चमत्कार है।' यहाँ लेखनी से लेखक की रचना का ज्ञान होता है।

(२) 'आपको प्याला प्रिय है।' 'प्याला' यहाँ शराब का द्योतक है।

(३) 'मैंने तुलसी का अध्ययन किया है।' यहाँ 'तुलसी' से उनके ग्रन्थों का अभिप्राय है।

(४) 'उसकी जेब भारी है।' यहाँ 'जेब' धन के लिए आया है।

(५) 'वह बढ़-बढ़कर बातें करता है।' यह झूठा कहने का कुछ कम अप्रिय ढंग है।

(६) 'सन सन', घड़ घड़', 'कल कल', 'मन मन', आदि ध्वनियों के अनुकरण से बने हुए शब्द हैं।

(७) 'कर्मयोग उसका मूलमंत्र है; कर्म के लिए वह अपना धन दे सकता है; तन दे सकता है; यही नहीं, अपना जीवन दे सकता है।' इस में उत्तरोत्तर उत्कर्ष है।

(८) 'उसने अपना चरित्र खोया; स्वास्थ्य खोया; धन खोया; वस्त्र खोये।' इसमें प्रधानता का क्रम से पतन है।

## ९—निबन्ध का आरम्भ

यद्यपि शैली के स्वरूप में कही गई बातों को आँखों के सामने रखने से किसी भी प्रकार की रचना का मार्ग खुल जाता है, तथापि नये लेखकों को आरम्भ में जिस कठिनाई का अनुभव होता है, वह भी भुला देने योग्य नहीं है। यह तो मानी हुई बात है कि जिस विषय पर लेख लिखना है उसका थोड़ा बहुत ज्ञान तो विद्यार्थियों को होना ही चाहिए, परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उनमें से बहुत से यह नहीं समझ सकते कि लेख किस प्रकार आरम्भ किया जाय, कैसे उसे निभाया जाय और कैसे उसका अन्त किया जाय। प्राय इसी प्रकार के प्रश्न विद्यार्थियों द्वारा शिक्षकों के सामने रखे जाते हैं

जिस प्रकार चढ़े हुए पानी का प्रवाह जिधर मार्ग पाता है उधर ही उमड़ पड़ता है, उसी प्रकार उठे हुए भावों में जो लहरें-सी आती हैं, उन्हींको समुचित शब्दों में लिख देना सर्वोत्तम विधि है। इसीको सीधा अपने विषय पर आ जाना कहते हैं। कुशल लेखक इधर-उधर के झमेले में न पड़कर इसी मार्ग का अवलम्बन करते हैं। परन्तु यह मार्ग जितना स्वाभाविक है उतना सुलभ नहीं। इसका एक कारण तो व्यक्तिगत प्रतिभा की न्यूनाधिकता है, जो सर्वथा मनुष्य के अधिकार की बात नहीं। दूसरा बचपन से ही सूक्ष्म-निरीक्षण तथा भाव-प्रकाशन का स्वभाव न डालना है। यह व्यावहारिक कठिनाई किस प्रकार दूर की जाय यह एक प्रश्न है। इसी पर यहाँ विचार करना है।

जिस विषय पर लेख लिखना हो, सबसे पहले उसकी सीमा को अच्छी तरह आँक लिया जाय कि किन-किन विचारों का निर्वाह उसके अन्तर्गत हो सकता है, तब आगे बढ़ा जाय। किसी विषय की व्यापकता, उसके शब्दों की गूढ़ता अथवा अन्य किसी कारण से हिचकने की आवश्यकता नहीं, जरा साहस से काम लेने से बड़ी-बड़ी जटिल गुत्थियाँ खुल जाती हैं। तैरनेवाला पानी की गहराई की परवा नहीं करता उसकी दृष्टि तो सदैव दूसरे किनारे पर रहती है।

विषय की सीमा का अनुमान [illegible] आवश्यक ही [illegible] से यह दूँ

उन्हें संकेतरूप से लिखते जाना चाहिए। विचारते समय भावों के किसी क्रम अथवा बन्धन की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इससे उठते हुए विचारों की शृङ्खला टूट जाने तथा उसमें गाँठ लग जाने का भय है। जब सब विचार एक बार लिख लिये जायँ, तब उनका क्रम स्थिर करना उचित है। वह इस प्रकार कि जो भाव पहले व्यक्त करना है, उसे पहले लिखा जाय और जो उसके पीछे लिखना है उसे पीछे। विशेष ध्यान इस बात पर रहे कि उन सबमें ऐसा तार्किक सम्बन्ध रहे कि स्वाभाविक ही एक से दूसरा निकलता हुआ जान पड़े और लेख में प्रधान विषय का पूर्ण परिपाक हो जाय। इसे लेख का ढाँचा, पूर्व विचार, विचार-सारिणी, विचार-तालिका या अन्य किसी ऐसे ही नाम से पुकार सकते हैं। लेख आरम्भ करने से पूर्व का ढाँचा बना लेना परमावश्यक है। इसके बिना लेख का कोई अङ्ग बड़ा, कोई छोटा, कोई काना, कोई कुबड़ा, कोई लूला और कोई लँगड़ा हो जायगा। अन्त में उस कुरूप रचना पर, विज्ञापन के लिए बने हुए चित्रों की भाँति किसीको घृणा आयेगी तो किसीको हँसी। नये लेखकों को तो इसके बिना आगे बढ़ना ही न चाहिए, वरन् बड़े-बड़े और सिद्धहस्त लेखक भी इसका आश्रय किसी किसी रूप में लेते ही हैं।

एक बार ढाँचा बना चुकने पर यह आवश्यक नहीं कि फिर उसमें कुछ परिवर्तन ही न किया जाय। यदि लिखते-लिखते बीच

में कोई नया भाव उठ खड़ा हो, अथवा किसी भाव को छोड़ना हो, तो वैसा अवश्य करना चाहिए, परन्तु बड़ी सावधानी के साथ। ऐसा करते समय देख लेना चाहिए कि तार्किक क्रम में कोई विरोध तो नहीं पड़ा।

विचार संग्रह कर लेने पर लेख लिखना सुगम हो जाता है। ढाँचे के एक-एक विचार एक-एक परिच्छेद (पैराग्राफ) अलग लिख देने से लेख सहज ही पूरा हो सकता है।

एक बात और है। विचार भी सुलझ गये और ढाँचा भी सामने है, पर क़लम नहीं चलती। समझ नहीं पड़ता कि किन शब्दों या वाक्यों से आरम्भ करें। यह दशा ठीक वैसी ही है, जैसी कि उस यात्री की होती है, जिसके सामने नाव खड़ी है, जो यह भी देख रहा है कि और लोग नाव में आ रहे हैं, जिसे यह भी ज्ञात है कि नाव पानी में डूबती नहीं, परन्तु पैर उठाते ही सोचता है कि नाव उलट न जाय, किस स्थान पर पैर रखकर चढ़ूँ। वह भय-पूर्वक पैर रखता है और नाव ज़रा डगमगा जाती है। इसमें दोष नाव का नहीं, भय से वह स्वयं अपने शरीर को साधना भूल जाता है और इसी भय की तैरने की शक्ति में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। जहाँ उसने ध्यान का मैं लगा, देखा कि नाव ठीक चलने लगी है।

कहीं यह न समझिए कि लेख आरम्भ करने का कोई नियम नहीं [illegible] जैसा [illegible] जहाँ [illegible] में

नहीं होती। पगडंडियाँ, पहाड़ी घाटियाँ, और नदियों के तट भी मार्ग हैं और वे स्वाभाविक सौन्दर्य में सड़कों से कहीं बढ़कर हैं। उनकी नैसर्गिक छटा बड़ी मनोहारिणी होती है। इसीलिए तो यह कहा गया है कि जो भाव अपने मन में उठे, उसे अपने ढंग से स्वाभाविक रूप में औरों के सामने रखिए। अपने शब्दों तथा वाक्यों में अपनी ही रुचि का सर्वोत्तम चुनाव कर लीजिए और लेख आरम्भ कर दीजिए। यही सबसे अच्छा मार्ग है। इसके अतिरिक्त जिन मार्गों का अवलम्बन किया जाता है, वे भी एक नहीं अनेक हैं। धुरन्धर लेखकों की शैली के अनुकरण पर अवलम्बित होने के कारण वे हमारे लिए अच्छे पथ-प्रदर्शक का काम देते हैं। बहुधा लेखक इन मार्गों का अनुसरण करते है—

लेख की एक सुन्दर भूमिका बाँधी जाती हैं, जिससे पाठकों की रुचि आरम्भ से ही अपनी ओर आकृष्ट हो। परन्तु, इस प्रकार की भूमिका का उत्तम होना भी अपने ही मस्तिष्क की उपज पर निर्भर है। किसी मिलते-जुलते उदाहरण द्वारा, अथवा नितान्त विरोधी दृष्टान्त द्वारा प्रधान विषय पर आना भी एक ढंग है। इसमें इतना ध्यान रहे कि भूमिका बहुत लम्बी न हो, विषय के अनुरूप ही हो। चुने हुए तथा चुभते हुए शब्दों में लिखकर उसे प्रभाव-शालिनी बनाया जाय।

कभी-कभी एक आकर्षक वाक्य द्वारा विषय का महत्व दिखा दिया जाता है, जिससे पाठक तुरत उस ओर झुक जायँ।

विषय के सुमधुर अथवा भीषण परिणाम द्वारा भी पाठकों का हृदय हिला दिया जाता है और वे सचेत कर दिये जाते हैं। अपने हृदय के विकार, हर्ष, क्रोध, घृणा, विस्मय आदि के सूचक शब्दों द्वारा भी पाठकों के मन पर अधिकार जमाया जाता है। कभी-कभी कथा का सार आदि में ही लिखकर विषय को स्पष्ट करने में सहायता पहुँचाई जाती है। बड़े-बड़े विद्वानों या कवि-कोविदों के उद्धरण भी लेख के आदि में लिख दिये जाते हैं। इनसे विषय पर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है। परन्तु, ऐसे अवतरणों के चुनाव में बड़ी चतुराई की आवश्यकता है। उनका भाव विषय के प्रधान विचार का सूचक होना चाहिए और उनके शब्दों में बिजली की-सी शक्ति हो, जो छूते ही पाठकों के हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न कर दे। परिस्थितियों के वर्णन तथा काल-क्रम से भी अनेक लेख आरम्भ किये जाते हैं। प्रायः ऐतिहासिक लेखों में ऐसा ही होता है। भविष्य का चित्र खींच देना या अतीत की रेखाओं का आभास करा देना भी इसी श्रेणी के लेखों का ढंग है। दैनिक जीवन के भिन्न-भिन्न भागों से किसी अद्भुत घटना को चुनकर लिख देना भी एक नया प्रभाव लाता है। इसमें लेखक की मर्मज्ञता का नमूना आरम्भ ही में मिल जाता है और पाठक श्रद्धा के भाव लेकर पढ़ना आरम्भ करता है। कहीं-कहीं वर्णनों में अनुकरणवाची ध्वनियाँ, जैसे: धड़धड़ धड़धड़, धूँ धूँ, सनसन सनसन, झमझम इत्यादि के द्वारा भी दृश्य का चित्र पाठकों के

सामने आ जाता है। किसी प्राकृतिक छटा का मनोरम वर्णन अथवा किसी बीभत्सकाण्ड की एक झलक भी अतुलनीय आकर्षण उत्पन्न करती है। इसी प्रकार और भी अनेक ढंग काम में लाये जा सकते हैं। लेखक की उदार और विराट् कल्पना इन सब की जननी है।

इसके अतिरिक्त कोई-कोई लेखक मोटे-मोटे अक्षरों से अथवा शब्दों के नीचे रेखाएँ खींचकर किसी बात का महत्व प्रकट करते हैं। परन्तु, ये बालकों को बहलाने की बातें हैं। अच्छे पाठक स्वयं सार ग्रहण करते हैं। हाँ, किसी गणित या चिकित्सा की पुस्तक में ऐसे नियम, जो अत्यावश्यक हों और जिनके लिए अन्य बातों का पढ़ना निरर्थक-सा प्रतीत हो, यदि मोटे-मोटे अक्षरों में दे दिये जायँ, तो वे लाभप्रद सिद्ध होते हैं।

लेख आरम्भ कर देने पर विषय का मध्य भाग सहज ही लिखा जा सकता है। तत्सम्बन्धी सभी विचारों का समावेश इसमें हो जाता है। एक बात इसमें विशेष ध्यान देने की है। बहुत से लेखक अन्य-अन्य विद्वानों के उद्धरण देने के बड़े शौकीन होते हैं। ऐसे उद्धरणों का चुनाव बहुत बढ़िया होना चाहिए और उनकी अधिक भरमार कभी करनी नहीं—विशेषकर छोटे-छोटे निबन्धों में। हाँ, कुछ [illegible] निबन्धों में इनका होना एक बड़ा [illegible] गुण है। [illegible]

गया है, तो हिन्दी पाठकों के लिए उसका हिन्दी रूपान्तर अथवा भाव अवश्य दिया जाय।

अब अन्तिम कठिनाई निबन्ध को समाप्त करने की है। जो रोचकता निबन्ध के आरम्भ करने के लिए आवश्यक है, वही उसे समाप्त करने के लिए भी। यदि अन्त अच्छा न हुआ, तो लेख का प्रभाव बहुत कम हो जायगा और किसी-किसी दशा में तो मिट ही जायगा। यहाँ लेखकको अपने बलका पूर्ण प्रयोग करना है। उसे अपने सन्देश की आत्म-शक्ति का प्रभाव दिखाना है, जिसके द्वारा वह पाठक को अपना करके छोड़ दे। आरम्भ की भाँति समाप्ति के लिए भी कोई निश्चित मार्ग नहीं है। उसकी सजीवता लेखक की लेखनी की जीवनी-शक्ति पर ही निर्भर है। अपने उद्-गारों को स्वाभाविक रूप में रख देना ही इसका भी सर्वोत्तम मार्ग है। पथ-प्रदर्शन के लिए नीचे लिखी कुछ बातों पर ध्यान रखना चाहिए—

ओजस्विनी भाषा में विषय का संक्षिप्त सार लिखकर पाठकों को प्रभावित किया जाय। अन्त में भला व बुरा परिणाम दिखा-कर उसे विचार-मग्न कर दिया जाय। किसी उत्थान व पतन का दृष्टान्त सामने रखकर उसके मन में सुधार की आकांक्षा को जागृत कर दिया जाय। समाज,देश वा जाति की किसी अवस्था पर प्रकाश डाला जाय। विषय का प्रतिपादन करते हुए उसी के अनुरूप कोई अवतरण दे दिया जाय। कोई रोचक वर्णन

अवस्थानुसार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वा अवनत बनाया जाय। पूर्वापर सम्बन्ध से भविष्य की आशा का एक चित्र खींच दिया जाय। अपनी एक सम्मति का भाव-विशेष लिख दिया जाय, अथवा कोई प्रस्ताव करके विषय को छोड़ दिया जाय और पाठक अपनी अपनी रुचि के अनुसार उस पर विचार करते रहें।

---

# १—सूर्योदय

[ सुबोध शैली में ]

विचार-सूची :—

( १ ) उषःकाल और खेतों की शोभा।
( २ ) बागों की बहार।
( ३ ) सरोवर का तट।
( ४ ) समुद्र और आकाश।
( ५ ) पहाड़ों का दृश्य।
( ६ ) प्रकृति के पाठ।

पीली फट गई। सूर्य उगने लगा। चारों ओर उजियाला छा गया। अँधेरे में चैन उड़ानेवाले उल्लू छिप गये। चमगादड़ उलटे पाँव जा लटके। जिधर देखिए उधर निराली ही शोभा दिखाई देती है। खेतों पर बहार ही बहार है। हरियाली से हृदय को बड़ा हर्ष होता है। पृथ्वी ने मानों धानी चादर ओढ़ ली है। नन्हीं-नन्हीं पत्तियों पर ओस की बूँदे मोतियों-सी चमक रही हैं। क्यारियों में कहीं-कहीं तितलियाँ फुदक रही हैं।

बागों में पेड़ों पर पखेरू चहक रहे हैं। कोमल पत्तियाँ हवा में हिल-हिलकर लहलहा रही हैं। फूल फूले नहीं समाते। हँस-

हँसकर लोगों को हँसा रहे हैं। वृक्षों की कुञ्जों पर मेलों के रंग-बिरंगे चूटे-धड़े सुहावने लगते हैं। फलों की शोभा दूनी हो गई है। जी चाहता है कि टकटकी लगाकर इन्हींको देखते रहें।

सरोवर के तट पर बैठने से कैसा आनन्द मिलता है। खिले हुए कमलों पर भैंरों की भीड़ रागिनी-सी अलाप रही है। चकवा-चकवी उछल-उछलकर गले मिल रहे हैं। नहानेवाले बड़े लड़के आगये हैं। उनके ग़ोता लगाने से जल में जो लहरें उठती हैं, वे मनको मोहे लेती हैं। सूर्य भगवान् को अर्घ्य देते हुए पूजा-पाठ-करनेवालों का दर्शन भी बड़ा ही भव्य है।

समुद्र के धरातल पर तो सूर्य-देव पानी से निकलते जान पड़ते हैं। उनकी किरणें दूर-दूर तक फैलकर पानी के ऊपर एक अनोखी ही छवि दिखाती हैं। कहीं-कहीं उठती हुई छिन्न-भिन्न लहरों में तो कई-कई रंग एक साथ ही दिखाई देते हैं। ऊपर बादलों को छूकर किरणों ने कैसी-कैसी आकृतियाँ बना दीं। समझ नहीं पड़ता ऊपर देखें या नीचे। दोनों ओर एक से एक बढ़कर सौन्दर्य है।

पहाड़ों की बर्फ़ से ढकी हुई चोटियों पर तो जादू-सा हो रहा है। अभी लाल, अभी हरा, अभी पीला, अभी बैंगनी कैसे-कैसे रंग बदल रहे हैं कि आँख धोखा खा जाती है। ऐसे ही दृश्य देख

कर मनुष्य की तुच्छ बुद्धि पर हँसी आने लगती और ईश्व
की सत्ता का ज्ञान होने लगता है।

जिस प्रकार प्रकृति के अङ्गों में सूर्योदय से नया रस उत्प
होता है, उसी प्रकार हमारे शरीर से भी आलस्य दूर भाग जात
और फुर्ती आने लगती है। हम कुछ देर तक घूमते-फिरते प्रात
काल की वायु का सेवन करते और नया बल लेकर कार्य में जु
जाते हैं। सूर्य भगवान स्वयं दिनभर अथक परिश्रम करके हमें
परिश्रम और उन्नति का पाठ पढ़ाते हैं।

## २—सूर्योदय

[ अलंकृत शैली में ]

विचार-सूची :—

( १ ) प्रकृति का आँगन।
( २ ) प्राची दिशा।
( ३ ) नदी का तट।
( ४ ) वृक्षों के शिखर।
( ५ ) हिम से ढकी हुई चोटियाँ।
( ६ ) अन्य विहार-क्षेत्र।

प्रकृति के आँगन में सूर्य-चन्द्र, तारे-नक्षत्र, बिजली-बादल,
नदियाँ-सागर, झरने-सोते, वन-जंगल आदि की बाल-क्रीड़ा होती
ही रहती है। जिधर देखिए उधर ही आँखें नाचने लगती हैं। यदि

रात में चाँदनी छिटकती है, तो दिन में सूर्य की किरणें कलोल करती हैं । एक एक दृश्य अनुपम ही है । सूर्योदय को ही लीजिए । कितना सुहावना, कितना मनोरम, कितना रमणीय कि देखते देखते हृदय लोट-पोट हो जाय । मनुष्यों की तो बात ही क्या इसे देख कलियाँ तक खिल जाती हैं । इस प्रकाश-पुञ्ज में अद्भुत आह्लादिनी शक्ति है ।

प्राची दिशा की रंगभूमि में जिस समय वह फुटबाल उछलती दिखाई देती है, आँखें उस उछालनेवाले खिलाड़ी के दर्शनों को आतुर हो उठती हैं । उसके किरण-जाल में प्रफुल्लता की तरङ्गें अठखेलियाँ-सी करती चली आतीं और अन्धकार की छाती में तीर की तरह घुस जाती हैं । हमारी नाड़ियों में नये रक्त का संचार होने लगता और कार्य का समय आरम्भ हो जाता है ।

किसी नदी के तट पर खड़े हो जाइए । बाल-रवि का प्रतिबिम्ब पानी में लोट-लोटकर नहाता और अपने सुनहरी बाल सुखाता प्रतीत होता है । कमलों की पत्तियों पर पड़ी हुई ओस की बूँदों में मोतियों का भान होता है । फूलों के ओठ खुल जाते और पँखड़ियाँ खिलखिलाती-सी दिखाई देती हैं । भौंरों की गुञ्जार भगवान भास्कर के गुणों का गान-सा जान पड़ती है

हरे-हरे वृक्षों की चोटियों पर [illegible] और [illegible] का सुन्दर समागम नयनों को सचमुच आनन्द देता है । ऐसा जान पड़ता है मानो [illegible] का स्वागत करने के [illegible] [illegible] [illegible]

पसार रहे हों। उन पर बैठे हुए विहग-वृन्द का कोलाहल समुद्र की उठती हुई कल्लोलों की होड़ करता है। उन्हींके मुख से मानों सरस्वती देवी जहां-तहां वीणा की झङ्कार सुनाती फिरती है।

बर्फ से ढकी हुई हिमालय की चोटियों पर उषा का प्रकाश पड़ते ही एक अलौकिक अभिनय होने लगा। वह चाँदनी के सरोवर में निकली हुई श्वेतता क्रम-क्रम से अरुणिमा में परिवर्तित हो गई। आँखें उठ न पाईं कि हरा, पीला, बैंगनी, नारंगी आदि बहुरंगी दृश्य दीख पड़ा, और चोटियाँ इन्द्र-धनुष का उपमान बन गईं। ऐ, यह माया भी हटने लगी! फिर वही श्वेतता, परन्तु प्रकाश में कुछ-कुछ धुंधली-सी दिखाई दे रही है। क्या कोई नट है, जो इस नाट्य की नकल उतार दे?

सागर के विशाल वक्षस्थल पर, वन, उपवन की अन्तर-पटी में तथा मरुस्थल की विशाल गोद में सर्वत्र ही सूर्योदय के साथ अभ्युदय की झलक आने लगती है। उमंगों का स्रोत उमड़ पड़ता और खेलने के लिए मैदान खुल जाता है। खेलनेवाले हँसते हँसते उस मैदान में कूद पड़ते और जीवन का आनन्द लूटते हैं।

## ३—दयानन्द शताब्दी

विचार तालिका :—

(१) शिव-रात्रि-जागरण की घटना

(२) महर्षि दयानन्द सुधारक रूप में

( ३ ) समारोह का दृश्य।
( ४ ) प्रबन्ध : आर्य-जीवन।
( ५ ) रात्रि और प्रातःकाल की चर्चा।
( ६ ) यज्ञ-मण्डप।
( ७ ) प्रधान-मण्डप।
( ८ ) अन्य सभाएँ : संन्यासि-मण्डल।
( ९ ) आर्य समाज की सहिष्णुता।
( १० ) जलूस।

## ( १ ) प्रवेश

एक दिन था, जब शिव-रात्रि-जागरण करते हुए एक युवा ने देखा कि एक चुहिया आती है और शिवजी के ऊपर श्रद्धा-सहित चढ़ाये हुए भोग का भोग लगाती है। शिव-लिङ्ग ज्यों का त्यों है; उसमें देवत्व की कोई प्रक्रिया दृग्गोचर नहीं होती। इस घटना से युवा के अन्तर्पट खुल गये। उसने यज्ञाग्नि के लिङ्ग-स्वरूप शिव की प्रतिमा में अन्धकार की एक रेखा देखी और समस्त आर्य-लोक पर उसका प्रभाव पाया। उसका हृदय द्रवित हो गया और इस अन्धकार को मिटाकर जातीय जागृति फैलाने का संकल्प उसने किया। वह मोह-निद्रा को भङ्ग कर तत्क्षण वहाँ से चल पड़ा। 'तीन लोक से न्यारी' मथुरा में उसे लोकोत्तर आलोक मिला। वहाँ उसने श्रीस्वामी विरजानन्द सरस्वती के चरणों में बैठ आर्य-धर्म का गहन अध्ययन किया।

उस प्रज्ञाचक्षु गुरु ने अपने शिष्य को वह मंत्र दिया, जिसने सोई हुई हिन्दू जाति में नवजीवन का सञ्चार किया। उस घटना को सौ वर्ष—सफल सौ वर्ष—हो गये।

वह युवा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती था। उसकी दया में उस समय कोमलता न थी, कठोरता थी। पर, वह आनन्द से परिपूरित थी, यह इन सौ वर्षों ने प्रमाणित कर दिया। उसे दूसरों की मूर्खता पर दया आती थी, और उस पर वज्र गिराने ही में उसे आनन्द आता था। वह बुरे को बिगाड़ना ही न जानता था, भले को बनाना भी जानता था। उसकी सूझ बड़ी पैनी थी। वह चतुर किसान था और सुरुचि-सम्पन्न माली भी। उसे अपनी खेती निराना और पौधों का सजाना खूब आता था। पर वह यती था। उसके शृङ्गार में—उसकी सजावट में—निसर्ग-रमणीयता थी; उसमें ललितकला, काव्य, नाटक, आदि को स्थान न था। वह सुधारक था धर्म-प्राण था; उसका उद्देश ही और था। वर्तमान आर्य-समाज, गुरुकुल आदि उसकी संगठन शक्ति के सुफल हैं।

उसकी पुण्य-स्मृति स्वरूप, सम्वत् १९८१ विक्रमीय का दि[illegible] [illegible] भगवान कृष्ण की अवतार-भूमि मथुरापुरी में [illegible] [illegible] के साथ मनाया गया। इस [illegible]-महोत्सव की [illegible] [illegible]

[illegible]

जंक्शन स्टेशन और नगरी के बीच में मानों दूसरी मथुरा बस गई थी। दो तीन लाख मनुष्यों की वह निवासस्थली युक्तप्रान्त के बड़े से बड़े नगर की समता कर रही थी। रात के समय यमुना को पार करती हुई बी० बी० सी० आई० रेलवे की गाड़ी जब वहाँ पहुँचती थी, तो प्रथम ही भानुनन्दिनी के तट पर नीले जल में दीपमाला से प्रकाशित मथुरा का प्रतिबिम्ब अलौकिक ही दीख पड़ता था। सिटी स्टेशन से बढ़ते ही थोड़ी दूर पर सीधे हाथ को शताब्दी के शिविरों की शोभा चन्द्र-ज्योत्स्ना में ऐसी प्रतीत होती थी, मानों मथुरा के इस ओर शुभ्र-सलिला भागीरथी ने अपनी बहिन यमुना के घर आकर आतिथ्य ग्रहण किया हो और उसके तट पर मुनियों की कुटीरें बन रही हों।

## ( २ ) प्रबन्ध

इतने विशाल समुदाय का प्रबन्ध आर्य-स्वयं-सेवकों द्वारा वहाँ के नियोजकों ने ही किया था। पुलिस की सहायता नहीं ली गई थी। फिर प्रबन्ध भी कैसा? आदर्श। स्टेशन से उतरते ही, कोई कितना ही अनजान क्यों न हो, कुछ कष्ट ही नहीं। तुरन्त स्वयं-सेवकों से सहायता मिलती थी। ठहरने के लिए, मानो घर में जा बैठे। खाने-पीने का सामान सब सस्ता और सुलभ। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लिए अलग-अलग शिविर थे प्रत्येक के साथ उन्हींकी रुचि के अनुकूल पदार्थों की दूकानें

सुखी हुई थीं। प्रधान बाजार में सब प्रकार के फल और अन्य खाद्य पदार्थ प्राप्त थे। पुस्तकों की दूकानों, प्रदर्शनी आदि सभी कुछ था। यह तो था सो था ही, इन सबके ऊपर थी भ्रातृ-भाव की भावना। जिस प्रेम, जिस सहानुभूति, जिस कल्याण और जिस सादगी के साथ यहाँ लोग रह रहे थे, यदि वही जीवन हमारे परिवारों में व्यतीत होने लगे, तो आर्य-गौरव के पुनरुत्थान में देर न हो और 'शत जीवेम शरदः' की कामना पूरी हो जाय।

## ( ३ ) ग्राम-जीवन

रात्रि के समय आनन्द मोहन। पत्ता भी नहीं खड़कने का स्वयं-सेवकों और ब्रह्मचारियों का पहरा; उनके बदलते हुए शब्द सर्वेन ( [illegible] ) और वे भी देववाणी में हिन्दू-भाषा की सुध दिलाते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी सैन्य शिविर में पड़े हों। ब्राह्म-मुहूर्त के आते ही आर्य-गायन की मधुर तान कानों में पड़ती थी। टोलियों की टोलियाँ गाती हुई निकलतीं जाती थीं, कहा नहीं जा सकता। मत-मतान्तरों का इतना सुन्दर समागम कहाँ देखने को मिलेगा? आर्य-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर यज्ञशाला में आइए। सुगन्ध से मानों सारा संसार महक रहा है। शारीरिक पवित्रता के साथ मनःपूतता का कैसा मधुर मिलन है! आर्यों के इस तत्त्वज्ञान की शतमुख से प्रशंसा करनी पड़ती है। हवन-गन्ध के साथ वायुमण्डल में मंत्रों की गूँज आत्म-परीक्षा की ओर ले जाती है और पतिताभिपतित भी एक बार उत्थान के लिए अग्रसर हो जाता है। दिव्य विचारों का यही प्रभाव है।

उत्सव के प्रधान मण्डप में चारों ओर आर्य-जीवन की झलक दिखाई देती है। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों, संन्यासियों, विद्वानों, वानप्रस्थियों का एकत्र पर समागम बड़ा ही हृदय-हारी है। चारों आश्रम वाले यहाँ एकत्र हैं। साम-गान के साथ कार्यारम्भ होते ही जब कोमल और मधुर स्वरावली कर्णगोचर हुई कि सारा आनन्द में लीन हो गया। इस सम्पूर्ण गान को सुनकर ध्यान आता कि क्या सोचकर गोस्वामी तुलसीदास ने 'ऋतु-मधुराई' के वेद-पाठ को 'चातुर-धुनि' से उपमा दी थी। यह [illegible] और यहाँ [illegible] हमारे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

किया जाय। सब अपने अपने ढंग के निराले थे। परन्तु संन्यासियों के सम्मेलन की चर्चा किये बिना आगे न बढ़ा जायगा। भगवा वस्त्रों की उस लटक में कुछ अद्भुत ही छवि थी। महर्षि दयानन्द के प्रताप की किरणें उन्हीं मुद्राओं में प्रतिलक्षित हो रही थीं। वहीं मस्तक सतत झुका रहना चाहता था। महर्षि के सन्देश-वाहक, निःस्वार्थ सेवा के मूर्तिमान अवतार, वेद-ज्ञान के प्रचारक वही नर-रत्न थे। उन्हें देखकर बौद्ध भिक्षुओं की कल्पना हो आई। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का मंत्र स्मरण आ गया। आर्य-जाति! अपने जीवन के फल को तूने इन्हींके रूप में समाज को अर्पण करना सीखा है। यही समर्पण तेरी विश्व-प्रेम की श्रद्धाञ्जलि है।

जिस प्रकार बरसात में बढ़ी हुई नदी का जल शरद ऋतु में निर्मल होता है, उसी प्रकार आर्य-समाज की आरम्भिक कट्टरता रूपी जलधारा इस शत-शरद के पश्चात् सहिष्णुता की विमल धारा बन गई थी। विधर्मियों के बनावटी साधुओं को पकड़ लेने पर भी और उन्हें शस्त्रादि सहित पाकर भी दयापूर्वक छोड़ देना सर्वथा आर्य-धर्म के अनुरूप ही था। आरम्भ में आर्य-समाज पर उपल-वर्षा करनेवाले अन्य भाई भी उतने ही उत्साह से भाग ले रहे थे, जितने में कि दयानन्दी। सन्देश की पवित्रता इसीको कहते हैं। सम्भव है कि कोई इतिहास-प्रेमी अशोक के समय के बौद्ध-सम्मेलनों की भाँति, इस आशा से गया हो

कि आर्यसमाज अपने धार्मिक सिद्धान्तों में कुछ युगानुकूल परिवर्तन करेगा और संसार को कुछ नया सन्देश देगा और उसे इसमें कुछ निराशा हुई हो। परन्तु जो कुछ था, वह था अभूतपूर्व और आर्योचित।

## ( ४ ) जलूस

एक बात रह गई। पहले दिन का नगर-कीर्तन और जलूस इतिहास का एक अचिन्तितपूर्व दृश्य था। वेद-भगवान् की सवारी उस मथुरापुरी में निकली, जहाँ भगवान् कृष्ण के भक्तों का दुर्ग है। उनमें जो सफलता हुई और जो भ्रातृ-भाव प्रदर्शित किया गया, उससे प्रतीत होता था कि आर्यसमाज की यमुना सनातन धर्म की गंगा में किस प्रकार मिल रही है। भक्ति और प्रेम की तरङ्गों का कैसा कौतूहलवर्धक उतार-चढ़ाव था। शिविरों से लेकर नगर के सिरे तक नर-नारियों की भीड़ इस प्रकार जा रही थी, जैसे समुद्र के धरातल पर धाराएँ। यों तो सारा जलूस ही अनुपम था, परन्तु वेदों की सवारी के पीछे संन्यासियों का मण्डल और उसमें ऊँचा उठा हुआ स्वामी श्रद्धानन्द का मस्तक उनके भावी उत्सर्ग की सूचना दे रहा था। महिलाओं का इतना बड़ा समारोह तो आज तक कहीं न हुआ होगा। देवियों के उस सम्मिलन से भारतमाता के उज्ज्वल मुख की कल्पना सहज ही की जा सकती थी। इतनी भीड़ आश्चर्य-जनक शान्ति के साथ जा रही थी कि उन पावन गृह के समीप

पहुँची, जहाँ ब्रह्मचारी दयानन्द अपने गुरु के पास स्वाध्याय किया करते थे। उस समय अपूर्व उल्लास था, उस टूटे-फूटे घर की दीवारों को देखकर कौन कल्पना कर सकता था, कि वहाँ से एक ऐसी आत्मा का उदय होगा, जिससे समस्त संसार आलोकित हो जायगा? सच है, "लाल गुदड़ी में नहीं छिपे रहते।"

## ४—भारत के साधु और फ़क़ीर

विचार-तालिका :—

( १ ) धर्म के नाम पर निराली लीलाएँ।
( २ ) सच्चे साधु।
( ३ ) हमारी मूर्खता।
( ४ ) देवताओं की बाढ़।
( ५ ) साधुओं के विचित्र ढंग।
( ६ ) महन्तों की माया।
( ७ ) मरने मसान का स्वाँग।

धर्म-भूमि भारत में धर्म के नाम पर न जाने क्या-क्या लीलाएँ होती रहती हैं। कहीं मांस बाँटा जाता है, कहीं धुप [illegible] हैं [illegible] हैं कहीं [illegible] हैं [illegible] है [illegible] कहीं [illegible] है [illegible] कहीं

चिमटा पटकता है, तो कहीं झुंड़चिरा सिर पटकता है। क्या-क्या कहें—"नाना वाहन नानाकारा। नानायुधधर नाना-चारा॥" इन नाना भाँति के जीवों को देख एक तो हंसी आती है और एक कलेजे में कसक उठती है। "ना जानूँ का भेष में नारायण मिलि जाई," की बात मनन्द में आती है, पर इन विराट् भेषधारियों को देख बबूला बन जाती है। इनमें श्रद्धा लाते समय न जाने क्यों सिर हिलने लगता है।

वह दिन था, जब भारत के गौरव-स्वरूप साधु-संन्यासी सांसारिक संकटों को छोड़कर अपने पवित्र उपदेशों से संसार का उद्धार करते और समाज-सेवा के द्वारा मोक्ष-लाभ करते थे। समाज भी उनकी सेवा में अपने को धन्य मानता था। लोगों ने उनके सुख को देखा, त्याग को नहीं; स्वातंत्र्य को देखा, बलि-दान को नहीं; वेष को देखा, उद्देश्य को नहीं। फल यह हुआ कि आज बावन लाख से अधिक भिखारी भारत-माता की छाती पर चढ़े निर्लज्ज विहार करते हैं। क्या करें, 'वेष-प्रताप पूजि-यत तेऊ' महात्माओं में अब भी हमारी वैसी ही श्रद्धा है। उनके चरण जहाँ पड़े, वहाँ हमारी आँखें बिछें, वे जहाँ रहें वहाँ हमारे नेत्र बनें, उनके पुनीत पदार्पण से हमारे घर पवित्र होते रहें, यही हमारी कामना है। उनके चरणों पर नतमस्तक होकर हम [illegible] [illegible] मधुपों का 'सब हमें रुचता है'।

इन नामधारी फक़ीरों की मौज का महल हमारी मूर्खता की नींव पर खड़ा है। भारतीय घरों में ही धर्म का स्वरूप शेष है और वहीं अविद्या का अखाड़ा जम रहा है। गृह देवियाँ धर्म का सात्विक स्वरूप भूल रही हैं और भूत-पूजा की ओर बढ़ रही हैं। दान-पुण्य हिन्दू जाति की सदा से विशेषता रही है, परन्तु अब पात्र-विचार का ज्ञान जाता रहा है। हमारा हृदय शीघ्र ही पिघल जाता है, और हम "मनहुँ मीचु चोटी गहे, देत विलम्ब न लाउ" की पवित्र प्रेरणा में फलाफल का विचार छोड़ बैठते हैं। हमारी इस भूल से हमारे समाज का, हमारे देश का अहित हो रहा है, यह देखकर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। ऐसी धर्मान्धता अवाञ्छनीय है, उसका समर्थन कोई समझदार नहीं कर सकता।

देवताओं के नाम पर माल उड़ा-उड़ाकर मस्त रहना और कुकर्म करना कहाँ की साधुता है? स्वार्थ की इस भावना ही ने तो हमारे देवताओं की संख्या बरसाती मेढकों की तरह बढ़ा दी है। कोई जीव, कोई वृक्ष, कोई मूर्ति, कोई जलाशय ऐसा है, जिसमें देवभाव न आया हो? कूड़े करकट की पूजा तक हम करते हैं। कल्याणी, मसानी, काली, बगड़ी, देवता, जरैया, सैयद, मीयाँ, चामड़, पथवारी, पीपल, बेर, आक, बबूल आदि अगणित देवता हैं। इन सब में ईश्वर की सर्वव्यापकता का ही भाव हो सो भी नहीं [illegible] दिखाना लिखता है कि कोई

भी आकर्षक वस्तु हमारा देवता बन सकती है। जब यहाँ रेल-गाड़ी चली ही थी, तब लोग उसके एंजिन की पूजा करते थे।

भैरव के भक्त भोपा बनकर लूटते हैं। मुसलमान नादिया की पीठ में जीभ, टाँग आदि काटकर जोड़ देते और गुसाईं बन कर शङ्कर बंभोला करते हुए पुजते हैं। सपेरे, फंजड़, भगवा वस्त्र पहनकर साधु बनते हैं। कोई कमर में घंटे लटकाकर एक कोड़ा चटकाते हुए भक्तों को मूँड़ते हैं। रंग-बिरंगी गुदड़ी पहन कर वा कान फाड़कर कोई कोई योगिराज बनते हैं। किसीके हाथ में खप्पर और गले में हड्डियों की माला रहती है, वे अपने को शरभङ्ग ऋषि की सन्तान कहते हैं, भक्ष्याभक्ष्य को खाकर कोई अघोरपंथी बनते हैं। कोई नंगे घूमकर परमहंस पदवी के पात्र बनते हैं। कोई इन्द्रिय को नाथ कर जितेन्द्रियता का दम भरते हैं। कोई एक हाथ ऊपर को उठाकर ही स्वर्ग को चढ़ते हैं। कोई सारे अङ्ग में विभूति लगा कर, जटाएँ बढ़ाकर पहुँचे हुए महापुरुष बनते हैं। कोई फेरी लगाते और कोई कंधे पर काँवर लटकाकर 'धनुषधारी राम' की ध्वनि लगाते हैं। कोई चिमटा और पुड़ियाँ लिए घूमते हैं। कोई ज्योतिष वा रमल बताकर माँगते हैं। किसी ने एकतारा [illegible] आदि बजाकर [illegible] 'भक्ति' का नया ढंग निकाल रखा है। संक्षेप में [illegible]
[illegible]

इनके अतिरिक्त कुछ प्रतिष्ठित नामधारी फकीर हैं। ये फकीर नहीं कहलाते, पर कर्म-विचार से फकीरों से कुछ कम नहीं हैं। इनमें पुरोहित, पण्डा, गुसाईं आदि हैं। बड़े-बड़े महन्तों की कथा न पूछिए। वे बड़े हैं; हाथियों पर चढ़कर माँगते हैं; गद्दी तकिया के सहारे पड़े विहार करते हैं, भोगमें योग का दावा इन्हींको है; इनके मठों में, विहारों में, मन्दिरों में, धर्मशालाओं में पुण्य-प्रार्थना के पीछे जो कुछ होता है, उसे लिखने बैठें तो भारत का एक काला महाभारत बन जायगा। 'वहीं ऊँची दूकान और फीका पकवान', इतने ही में सब समझ लीजिए।

माँगते समय का इनका स्वरूप देखिए। यह रूप धारण करेंगे, ऐसी त्योरी चढ़ावेंगे, ऐसा रंग चढ़ायेंगे, ऐसा श्वांस भरेंगे कि यदि उनकी माँग पूरी न हुई तो न जाने किस आपत्ति का पहाड़ टूट पड़े। शाप तो इनके मुँह पर है और पाप इनके हृदय में। हमारी धर्म-भीरुता हमारी इच्छा शक्ति को पोच बना देती है और हम इन ढोंगियों के सामने प्रायः लच जाते हैं। यदि इन देश कलङ्कों का यों ही पोषण होता रहा, तो हमारे नाश के दिन दूर नहीं।

## ५—मेरी सिंहगढ़-यात्रा

पूर दिशा [illegible]

[illegible]

( २ ) सिंहगढ़ की स्थिति।
( ३ ) पूना से प्रस्थान और मार्ग के दृश्य, मोढ़ा नदी का बाँध।
( ४ ) मावली कुली और वर्षा की बौछार।
( ५ ) चढ़ाई।
( ६ ) ऊपर के दृश्य,—ताना जी की समाधि, शिवालय, जलाशय, आदि
( ७ ) उतार।

एक असहाय अबला सिंहगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में औरंगजेब के सिपहसालार उदयभानु के पञ्जे में पड़ गई थी। उसने छत्रपति शिवाजी को सन्देशा भेजा कि आप आकर इस अत्याचारी से मेरी धर्म-रक्षा करें, यदि आज की रात और बीत गई, तो मेरा त्राण असम्भव हो जायगा। जिस समय यह संदेशा आया, महाराज शिवाजी एक और दुर्ग को विजय करने में लगे हुए थे। उनके वीर सामन्त तानाजी के हाथ में सन्देश-पत्र पहुँचा, तो उस सुभट के भुजदण्ड फड़क उठे। परन्तु सेना और सिपाही कहाँ? केवल दो सौ मावली जाति के वीर साथ लेकर वह आधी रात के समय दुर्ग के समीप पहुँचा। निशा के गहन अन्धकार में अगम्य पर्वत की चोटी पर चढ़कर, उस अबला की रक्षा में, उन मुट्ठी भर वीरों ने जिस प्रकार अपने प्राण बलिदान किये और शाही सिपहसालार का वध किया, वह वीर-गाथा मेरे हृदय में

बहुत पहले ही सिंहगढ़-दर्शन की बलवती इच्छा उत्पन्न कर चुकी थी।

जिस समय मैं पूना पहुँचा, वर्षा हो रही थी। श्रीयुत केलकर ने मुझे सम्मति दी कि यह समय सिंहगढ़ जाने के लिए अनुकूल नहीं है। परन्तु, फिर ऐसा सुयोग मिले न मिले, यह विचारकर मैंने जाने का ही निश्चय किया। सिंहगढ़ पूना से पन्द्रह मील की दूरी पर है। ग्रीष्म ऋतु में वहां के धनी मानी सज्जन प्रायः सिंहगढ़ ही चले जाते हैं। पश्चिमी घाट की सुहावनी श्रेणी और शीतल समीर उन्हें वहाँ खींच ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल तथा कालेज के विद्यार्थियों और अनेक यात्रियों तथा मित्रों की गोष्ठियाँ आनन्द मनाने के लिए वहाँ जाती आती रहती हैं।

पूना से सिंहगढ़ जाने आने में पूरा दिन लग जाता है। इस लिए कुछ फल और चिउड़ा (चावल और मेवाओं का एक प्रकार का स्वादिष्ट चबेना) लेकर मैं ताँगे पर सवार हुआ। वर्षा के कारण पहाड़ी मार्ग बहुत बिगड़ जाता है, इस कारण ताँगेवाले ने बारह रुपये लिये। मार्ग में महाराष्ट्र प्रान्त के ग्रामों की छटा देखने को मिली। वही पुराने ढङ्ग का हल और प्राय यहाँ की-सी ही बसावट सर्वत्र है। छोटी-छोटी बातो मे कुछ अन्तर भले ही रहे। ताड़ के वृक्ष बहुत दिखाई देते हैं, कहीं-कहीं तो इनके बाग हैं। पूछनेसे पता लगा कि यहाँ के लोग ताड़ी बहुत पीते हैं।

ग्यारह मील चलने के पश्चात् मोठा नदी का बाँध दृष्टिगोचर हुआ। यह नदी पूना के समीप ही होकर बहती है। अँगरेजों ने बाँध बाँधकर इसकी धारा को वहाँ रोक दिया है। दोनों ओर छोटे-छोटे पहाड़ों के बीच में नदी का रुका हुआ जल घने बीच में फैला हुआ है। इस लम्बे चौड़े जलाशय को झील कहना अनुचित न होगा। जिन्होंने नरोरा पर गंगा का पुल देखा है, वे इसकी कुछ-कुछ कल्पना कर सकते हैं। यहाँ पहाड़ियाँ होने के कारण इसकी शोभा कहीं अधिक बढ़ गई है। मीलों के विस्तार में पड़ी हुई वह जल-राशि चाँदी की सुन्दर चद्दर-सी प्रतीत होती है और जहाँ तहाँ लोहे के फाटकों के सुदृढ़ बाँध के ऊपर से गिरता हुआ सलिलसमूह झरनों का अद्भुत आनन्द देता है। ऊपर से गिरती हुई पानी की धारा जब नीचे आकर छिन्न-भिन्न होती है, तो ऐसा जान पड़ता है, मानो किसीने मोतियों के ढेर बखेर दिये हों। जिस ओर दृष्टि जाती, उधर ही चाँदनी सी छिटकी जान पड़ती है।

इस मनोहर दृश्य को देखकर मैं फिर सिंहगढ़ की ओर बढ़ा। लगभग एक मील तक तो एक ओर पहाड़ी, दूसरी ओर इस झील का दृश्य सामने रहा · तब एक मोड़ आया। दोनों ओर वृक्षों की हृदय-हारिणी शोभा और सामने उठे हुए सिंहगढ़ की शिखर-तुल्य ही ध्वजा मन में न जाने क्या-क्या भाव उत्पन्न कर रही थी। सायङ्काल के चार बजे [illegible] [illegible] [illegible] हो जाता है। मैं तब [illegible] 'सिंहगढ़' के नीचे पहुँचा

ताँगेवाले ने कहा, "बाबूजी, शीघ्र ही लौट आइएगा, नहीं तो आप मुझे व मेरे घोड़े को न पायेंगे, कोई सिंह आकर समाप्त कर देगा।" इतने ही में ताँगे की खड़खड़ सुनकर मावली कुली दौड़ आये और 'सुड़ची, सुड़ची' कहकर मुझे घेर लिया। मैं कुछ न समझा। ताँगेवाला भी न समझ सका। मैंने लाने का संकेत किया, तो एक कुरसी वे लोग उठा लाये। अब मैं समझा कि ये लोग कुरसी को सुड़ची कह रहे थे। इसी पर बिठाकर ये लोग यात्रियों को ऊपर ले जाते हैं। चढ़ाने और उतारने का किराया तीन रुपया गवर्नमेंट की ओर से नियत है।

इतने ही में वर्षा की एक बौछार आगई। ये लोग मुझे पास ही वन की घनी छाया में स्थित अपने एक टूटे-से मन्दिर में लिवा ले गये। मन्दिर दुर्गा या काली का था। उस निर्जन स्थान में काले-काले मावलियों से घिरा हुआ मैं, वहाँ की भयङ्करता का अनुभव कर रहा था। उनकी भाषा थोड़ी-थोड़ी, सो भी अनुमान से, समझ लेता था। एक छाया में मुझे खड़ाकर वे लोग भीगते रहे। दीनता उनके चेहरे पर टपक रही थी। उन्होंने बतलाया कि यहाँ के ये क्यारियों के बराबर खेत भी पटवारियों के द्वारा नपे पड़े हैं, वे लोग लगान भी कठिनता से दे सकते और इस दरिद्र देश में रहते हैं।

वर्षा बन्द होते ही आठ कुली मुझे कुरसी पर बिठाकर चले। चढ़ाई इतनी कड़ी है कि कहीं कहीं तो आधी दीवार-सी पर

नीचे बिल्कुल ढालू पहाड़ी। आँखे फट गईं। दिन में भी तो उस पर चढ़ना सहज नहीं। फिर आधी रात के अँधेरे में किस प्रकार उन वीरों ने चढ़ाई की होगी, यह दृश्य मेरी आँखों में घूम गया। कुछ काल के लिए मेरे माथे में राष्ट्रवीर शिवाजी के वीर कृत्यों की कल्पना चक्कर काटती रही। उतरा तो मावलियों से पूछा—"क्या तुम अब भी इस पर चढ़ सकते हो?" "हाँ" कहते हुए उन्होंने पेट पर हाथ रखा और मैं रो पड़ा।

इसके उपरान्त मैं उस शिवालय में पहुँचा, जहाँ वीरश्रेष्ठ शिवाजी नित्य-प्रति दर्शन को आते थे। एक पुजारी आया, उसने दर्शन कराये। मैंने उसे कुछ पत्र-पुष्प भेंट किये। पास ही मन्दिर की ओर मुख किये लोकमान्य तिलक का बंगला था। फूँस के उस बँगले में मुनियों की कुटीरों की छवि विद्यमान थी। वहाँ से चलकर एक जलाशय देखा। दुर्ग के ऊपर यह स्वाभाविक, सुन्दर किन्तु छोटा सा जलाशय अनुपम ही है। इसका निर्मल नीर, और उसमें तैरती हुई लाल, सुनहरी मछलियाँ मन को मोह लेती हैं। यहीं से पूना तक एक मार्ग-द्वारा इसका जल पहुचाया गया है, और वह पूना में दो कुण्डों में जाकर जमा होता है। अब भी वहाँ के अनेक लोग नल को छोड़कर इसीका जल पीते हैं। पेशवा के समय में इसीका जल राज-भवनों में भी पिया जाता था। मैंने इसीके तट पर बैठकर जलपान किया। यहीं से तोरना, पन्हालगढ़

( ४ ) संध्या; रात्रि।

( ५ ) बाग; तालाब; खेतों की क्यारियाँ।

( ६ ) शिक्षा, सामाजिक जीवन; स्वाभाविकता।

कोलाहल से दूर, आधुनिक सभ्यता के अछूत और सरलता के सपूत ग्राम्यजीवन में जो आनन्द है, वह नगरों की भन-भन में मगन मनुष्यों को कहाँ प्राप्त ? यद्यपि वहाँ न बिजली के पंखे हैं, न नल का जल; न दमदमाती लम्पें हैं, न मोटर वा रेल का पथ : न मेवे और फलों की मण्डियाँ हैं, न मिठाइयों की दूकान। परन्तु, फिर भी वहाँ कुछ ऐसी मिठास है कि वहाँ सचमुच स्वर्ग का वास है।

प्रातःकाल उठिए। घड़ी देखने का काम नहीं। वहाँ तो घड़ी-घड़ी प्रकृति अपनी घड़ी लिये खड़ी है। धूप और चाँदनी से ही समय जान लिया जाता है, तारे भी उसमें सहायता करते हैं। जंगल में आइए। लहलहाते हुए वृक्ष अपने पत्तों के बहाने हाथ हिला-हिलाकर बुलाते हैं। मर्मर अपने सुखावह स्वरों से दुःख को मिटा देता है। खुले मैदान में शौच-क्रिया से निवृत्त हूजिए। किसी लखपती नगर-वासी का शौचालय भी उतना विस्तृत और स्वास्थ्यकर न होगा, जितना कि ग्राम के कंगला तेली का। कुएँ की मुँडेर पर ताज़ी दातुन करते समय और सर्द पानी से स्नान करके डण्ड लगाते समय तो आनन्द की सीमा नहीं रहती। कहाँ वह वायु-सेवित मनोरम तालाब और कहाँ गन्दगी

यदि ग्राम के समीप कोई नदी या तालाब हुआ, तो आनन्द चौगुना हो गया। वहाँ पशु भी कलोल करते हैं और वहीं अपना भी मनोविनोद हो रहा है। जहाँ बाग़ बग़ीचे हैं, वहाँ के सुख का तो कहना ही क्या। ताज़ा ताज़ा फल खाने को मिल जाता है और मनोहर दृश्य देखने को। यह कुछ भी न हो तो क्या? खेतों की क्यारियों में ही केसर के से फूल खिले रहते हैं। फूली हुई सरसों का सुहावना दृश्य मीलों तक पीताम्बरी छटा उपस्थित कर देता है। समय समय पर रमास और मटर की फलियाँ, चने के होले, मक्का की भुट्टियाँ, बाजरे की बालें, महकती हुई मेंड़ें, खिलते हुए ख़रबूज़े, रस-भरे पौड़े, गुड़ की भेलियाँ, मेथी, बथुए का साग, गाजर, मूलियाँ आदि प्रत्येक ऋतु के रसमय पदार्थ प्राप्त होते हैं। उन धुली हुई गाजरों को खाते-खाते पौधों में पानी लगाने में जो स्वाद और आनन्द है, वह रसगुल्लों में नहीं।

कहा जा सकता है कि वहाँ शिक्षा की कमी है; ज्ञानविज्ञान के साधन वहाँ नहीं है। सामाजिक जीवन की विविधता भी वहाँ नहीं है; पशुओं का-सा जीवन है। परन्तु, सहज जीवन के सामने इस अज्ञान का मूल्य कितना है? हमारी ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ अशान्ति का साम्राज्य बढ़ गया है। शरीर-सेवा, और लौकिक श्रम के [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] किस

प्रकार गला घोंट रहा है, इसे कौन नहीं जानता ? कर्तव्य का क्षेत्र तो ग्रामों में भी कम नहीं, तत्वज्ञान के लिए वहाँ का एकान्त जीवन ही अच्छा है। दुर्व्यसनों से दूर रहने के लिए ग्राम सुरक्षित दुर्ग हैं। जीवन की सरलता और विचारों की विमलता वहाँ से बढ़कर अन्यत्र दुर्लभ है। भ्रातृ-भाव और सहानुभूति की तो ग्राम मानों जन्मभूमि ही हैं। यदि कृत्रिमता के कमनीय कलेवर में हमारी आँखें न उलझ गई हों, तो ग्राम्य जीवन ही स्वाभाविक जीवन है। उसमें सुर-मन-मोहक मधुरता और बाल-सुलभ सरलता है।

## १५—स्वामी विवेकानन्द

पूर्व विचार—

( १ ) जन्म : वंश : पूर्वज।
( २ ) शिक्षा, विद्यालय-जीवन।
( ३ ) आत्मिक अशांति। श्रीरामकृष्ण परमहंस के दर्शन।
( ४ ) सन्यास, योग-साधन।
( ५ ) अमेरिका-इङ्गलैंण्ड-भ्रमण, वेदान्त का प्रचार।
( ६ ) कोलम्बो से अल्मोड़ा तक
( ७ ) [illegible]
[illegible]

बालक नरेन्द्र ने ९ जनवरी, १८६२ ई० को जन्म लिया था। यही बालक पीछे स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुआ, जिसकी गणना संसार के सर्वोत्तम उपदेष्टाओं, और आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानियों में की जाती है। यह कायस्थ जाति के दत्त-वंश का रत्न था। उसके पूर्वज सरल, भक्त, और धर्मजीवन थे। उसके पितामह ने अपने अन्तिम जीवन में सन्यास ग्रहण किया था, और उसके पिता कलकत्ता हाईकोर्ट के अटर्नी (वकील) थे। इस बालक की माता विचित्र मेधावती थीं। दत्तवंश की इस महत भक्ति-परायणता, तार्किक सूक्ष्मदृष्टि और प्रखर प्रतिभा में वह बीज छिपा हुआ था, जो स्वामी विवेकानन्द में अङ्कुरित, पल्लवित, कुसुमित और ललित फलान्वित हुआ।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात', यह कहावत नरेन्द्रनाथ पर चरितार्थ होती थी। बाल्यकाल से ही उनमें वह महानुभूति, भ्रातृ-भाव, विशुद्ध भक्ति, मानवप्रेम और अध्यात्मानुराग पाया जाता था, जिसने कि उन्हें अन्त में विश्व-विख्यात बना दिया। वे जब स्कूल में थे, तभी से हिन्दू-दर्शनों के अध्ययन में तत्पर रहने और प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी हर्बर्ट स्पेन्सर की पुस्तकें पढ़ा करने थे। कहा जाता है कि कालेज में पहुँचकर उन्होंने स्वयं स्पेन्सर को एक पत्र लिखा था, जिसमें उसके कुछ आध्यात्मिक विचारों की [illegible] की [illegible] इस पत्र में उन्होंने जिस [illegible] की मुख्य

हो गया था, और उसने उन्हें सत्य की खोज के लिए प्रोत्साहित किया था।

अब वह समय आया, जब नरेन्द्र के विचारों में क्रान्ति उत्पन्न हुई। वे यूरोपीय दर्शन-ग्रन्थों को पढ़ते, परन्तु उनके पदार्थ-वाद से उनकी तृप्ति न होती थी। वे कट्टर ईश्वर-वादी थे। उनकी पिपासाकुलित आत्मा सत्य की खोज के लिए छटपटा रही थी। वे "बी. ए." पास कर चुके थे: कानून की तैयारियाँ कर रहे थे: परन्तु, उनका मस्तिष्क अन्धकार और शङ्काओं से पूर्ण था: उनके मनस्ताप का ठिकाना न था। वे ऐसे आध्यात्मिक गुरु की खोज में थे, जो उनकी शङ्काओं का निवारण करके उस अन्धकार को दूर करे।

उनकी यह चिरकांक्षित आशा पूर्ण हुई और उन्हें दैवी प्रकाश के दर्शन हुए। नरेन्द्र के एक चचा उन्हें श्री रामकृष्ण परमहंस के पास ले गये। परमहंस पहुँचे हुए महात्मा थे—उन्होंने आत्मा को जान लिया था। यह नरेन्द्र के जीवन-नाटक का पट-परिवर्तन था। इस मिलन में अद्भुत हृदय-स्पर्शिता थी। प्रथम दर्शन ही ने गुरु-शिष्य को बाँध दिया। उस वीतराग, तपोधन साधु ने अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण की गुणावली में कुछ गाने के लिए कहा। विवेकानन्द ने स्वर-सर्वस्व से मधुर तान छेड़ी. और ऐसी छेड़ी कि अनेक शिष्यों से परिवेष्टित ध्यानस्थ गुरु की हृत्तन्त्री के तार झङ्कार उठे। दिव्यानन्द और भगवान कृष्ण की प्रसन्न

आभा से उनका मुखमण्डल आलोकित हो गया; उस गायन
अनित भव्य दर्शन की कल्पना हमारे शरीर में थरथरी उपजाती
और हिन्दू हृदय को भक्ति से भर देती है। इस प्रकार गुरु-शिष्य
के उस जीवन-सम्बन्ध का आरम्भ हुआ, जिसने शिष्य के
भविष्य-जीवन की अखिल धारा को बदल दिया।

१६ अगस्त, १८८६ ई० को श्रीरामकृष्ण ने अपनी मानव-लीला
संवरण की। उस समय उनके अनेक शिष्यों ने सांसारिक जीवन
छोड़कर श्री रामकृष्ण-समाज का संगठन किया। स्वामी विवेका-
नन्द ने भी सन्यास लिया, और वेदान्त-प्रचार के लिए सदा
अपना जीवन समर्पित किया। कुछ काल अपने गुरुभाइयों के
साथ कार्य करके वे हिमालय में योग-साधन के लिए चले गये।
तिब्बत पहुँचकर उन्होंने बौद्ध मत का भी अध्ययन किया। फिर
समस्त भारत में भ्रमण करके वेदान्त की विजय-पताका फहराई।
इसी समय मद्रास प्रान्त के कुछ लोगों ने शिकागो में होनेवाली
धार्मिक महासभा में स्वामी विवेकानन्द को भेजने का प्रस्ताव
किया। चन्दा एकत्र किया गया, और स्वामीजी अमेरिका
पहुँचे।

अमेरिका पहुँचकर उन्हें महाविपत्ति का सामना करना पड़ा।
पास के पैसे से रुपये समाप्त होगये। अपरिचित देश में
स्वामीजी का इधर उधर भटकना पड़ा ... उसी समय एक वृद्ध
... [illegible]

होनेवाला था। यह सोचकर कि स्वामीजी का यह विचित्र वेष मित्रों के विनोद का कारण होगा, उसने उन्हें भी निमन्त्रण दिया। भोज के समय विनोद के स्थान में स्वामी ने अपने मस्तिष्क और हृदय के बल से बुढ़िया के मित्रों को चकित ही नहीं कर दिया, वरन् अपना प्रशंसक भक्त बना लिया। हिन्दू-दर्शन पर स्वामीजी के प्रतिभाशाली वार्तालाप से उन्हें पता लगा कि उनके लिए उस विषय का समझना भी कठिन है।

फिर क्या था? अमेरिका में उनकी धूम मच गई। धार्मिक महासभा में उन्होंने जिस प्रकार भारत का मस्तक ऊँचा किया, उस पर वहाँ के 'न्यूयार्क हेराल्ड' पत्र ने लिखा था :—

"धार्मिक महासभा में विवेकानन्द निस्सन्देह महान् मूर्ति हैं। उनका भाषण सुनने के पश्चात् हमें अनुभव हुआ कि इस विद्वान् राष्ट्र के लिए धर्म-प्रचारक भेजना कितनी मूर्खता है।"

अमेरिका के अनेक नर-नारी उनके शिष्य बन गये। वेदान्त समाज की स्थापना भी उन्होंने वहां की। उनके शिष्यों में श्रीयुत सैण्ड्सबर्ग ( स्वामी कृपानन्द ), कुमारी मारगैरेट नोबिल ( भगिनी निवेदिता ) आदि ने केवल शिष्यत्व ही ग्रहण नहीं किया, वरन् वेदान्त के प्रचार में अपनी समस्त शक्ति तथा योग्यता भी लगाई। वहाँ से वे इङ्गलैण्ड गये और वहाँ दो महीने तक वेद तथा उपनिषदों पर व्याख्यान देकर सम्मानित हुए

१८९६ ई० में स्वामीजी अपनी जन्मभूमि भारत को लौटे और कोलम्बो मे उतरे। कोलम्बो से अलमोड़ा तक के भ्रमण में मातृ-भूमि ने इस प्रकार बाँहें पसार कर उनका आलिंगन किया कि वह भ्रमण ही एक जलूस-सा हो गया। जहाँ जहाँ वे गये, उन्होंने वेदान्त का मंत्र जनता मे फूंका। उनकी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि वेदान्त का सार्वभौम प्रचार हो, और हिन्दू जाति सदाचार अध्यात्म तथा तत्वज्ञानमें अन्य जातियों को प्रकाश दिखानेवाली रहे। स्वदेश मे भी इसके लिए उन्होंने प्राण-पण से चेष्टा की। अथक परिश्रम करते करते उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इसी कारण वे जापान का निमंत्रण भी स्वीकार न कर सके। परन्तु स्वास्थ्य के पीछे उन्होंने अपना कार्य न छोड़ा।

१९०२ ई० के जुलाई मास का मनोरम और सुखद प्रभात-काल था। स्वामी जी ने ध्यान-योग किया, फिर संध्या में कुछ नवीन शिष्यों को उपदेश दिया। दोपहर पीछे वेद-पाठ में आत्म-तुष्टि करके वे फिर समाधि-लीन हुए। संध्या के समय शान्त और नीरव भ्रमण किया। टहलकर लौटे तो प्रार्थना करने बैठ गये, और दिव्यालोक में निमग्न हो गये। रात के नौ बजे उनकी अविनाशी आत्मा देह-बन्धन को छोड़कर ऊर्ध्वलोक को उड़ गयी।

स्वामी 'विवेकानन्द' क ... वन के जीवन में सर्व- [illegible]

और जादूभरा उनका प्रभाव था! उनका स्वरूप तेजस्वी और प्रभुता-सम्पन्न था; उनकी वाणी में गौरव-भरी गूँज थी। वे अपने मनोभावों को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त करते थे। इन सब का उपयोग उन्होंने आर्य-गौरव को बढ़ाने और आर्य धर्म के प्रचार में किया। उनका हृदय प्रेम और दया से पूर्ण था। उनकी देश भक्ति भी अगाध थी। वे अपने भाषणों में भारत के शिखरासीन गौरव-काल का वर्णन करते करते हर्षातिरेक से झूमने लगते थे। उन्होंने वेदान्त को नवीन रूप में रखा। वे वैज्ञानिक विचार-वेत्ता थे; छिद्रान्वेषण उनका काम न था। उन्होंने जो कुछ ज्ञानार्जन किया, सब मातृ-भूमि के चरणों पर चढ़ा दिया। अपने प्रबुद्ध जीवन से वे भारत में नवजीवन भर गये। ऐसे ही सपूत, देश का सिर ऊँचा उठाते, और मरकर भी अमर बन जाते हैं।

## ८—निन्यानवे का फेर

विचार सूची :—

(१) लाला भोलानाथ और नन्दू का जीवन।
(२) लालाजी की धर्म-पत्नी का पश्चात्ताप।
(३) लालाजी का उत्तर।
(४) ललाइन की करुणा।
(५) निन्यानवे की पोटली, परिणाम

लाला भोलानाथ की हवेली शहर के अच्छे घरों में गिनी जाती थी। ये बड़े साधु-स्वभाव, धनी और मितव्ययी थे। इनकी धर्म-पत्नी भी दया का अवतार और भक्ति की प्रतिमा थीं। इनका पुत्र दीनानाथ और कन्या विमला भी अपने माँ बाप की होनहार सन्तान थे। सब के सब इतना सरल जीवन बिताते थे, कि पास पड़ोस के ही नहीं, नगर के सभी लोग उनका नाम लेते थे। इनके पड़ोस में एक नन्दू हथेरिया भी रहता था। मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनाकर वह चैन की छानता था। जो कुछ कमा कर लाता, वह सब खाने पीने में खर्च कर देता था। चार पैसे पीछे डालना तो उसने सीखा ही न था, न कल की चिन्ता थी, न आज का विचार। स्थिति का वह ध्यान ही न करता था, सन्तान के लिए भी कभी सोचता न था। नित्य उसके घर में सुगन्धित भोजन की गन्ध और मसालों की महक उठा करती थी। आज पूरियाँ उड़ रही हैं, कल हलवा, परसों दही-बड़े आदि की बाद बन रही है, तो अतरसों खीर-भात। लालाजी और नन्दू के जीवन में इतना ही अन्तर था जितना कि दोनों ध्रुवों में।

लालाजी की धर्म-पत्नी अपने झरोखे से यह सब दृश्य देखा करती थीं। एक दिन [illegible] और अपने स्वामी से [illegible]

है और जीवन का आनन्द लूटता है। ऐसा भी क्या, भगवान् धन दे तो उसका उपभोग पूर्णरूप से करना चाहिए। हमारा जीवन इस धन की रखवाली के ही लिए तो नहीं बना है। मैं मानती हूँ कि आप समय-समय पर दुखियों की सहायता करने से पीछे नहीं रहते ; तो भी अपने शरीर पर उतना व्यय नहीं करते, जितना कि आप जैसे धनी को करना चाहिए। मेरी समझ में तो यह बात आपको शोभा नहीं देती।

भोलानाथ नाम के भोलानाथ थे, वे बड़े चतुर ; ताड़ गये कि श्रीमतीजी का मन भोग के आनन्द ने लुभा लिया है। ऐसे मनुष्य थोड़े होते हैं, जो जीभ को लगाम लगा सकें। जीभ के स्वाद के पीछे कितने अपना जीवन नहीं दे बैठे ? जीने के लिए खाना और खाने के लिए जीना, इन दोनों का अन्तर लाला भोलानाथ जानते ही थे, अपने जीवन में उसका व्यवहार भी करते थे। खाना उनका सर्वस्व न था, वे शरीर को पुष्ट करने-वाला, किन्तु सादा भोजन ही पसन्द करते थे। अपनी पत्नी के कहने का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया—"प्रिये ! खाने-पीने के लिए ही यह शरीर नहीं बना, वे तो दूसरी दशा के साधन हैं। परोपकार के लिए भगवान् ने हमें यह शरीर दिया है। यह शरीर जीने के लिए [illegible] इस बात का ध्यान [illegible] रखना चाहिए। [illegible] इसके लिए [illegible] आवश्यक है। [illegible]

झुक जाते हैं। यदि हमारे पाँव सौर से बाहर निकल गये, तो ठीक न होगा, "तेते पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर।" इसमें हमारी स्वाधीनता छिन जाती है और चिन्तायें आ घेरती हैं। चतुरों की दृष्टि भविष्य पर सदैव रहती है। भगवान् न करे, नन्दू के घर में कल ही से रोग का प्रवेश हो जाय, तो बेचारा क्या करेगा? उस समय इसकी दशा कितनी दयनीय होगी? यह आनन्द में भूला हुआ है, इसे आगे की कुछ चिन्ता नहीं। न बाल-बच्चों का कुछ ध्यान है, न अपने तन का। ऐसी विचार-शून्यता पशुओं का लक्षण है, मनुष्य को तो भगवान ने बुद्धि दी है।"

यह सुनकर उनका हृदय पिघल गया। नन्दू के बच्चों के भविष्य की कल्पना से ललाइन की आँखों से करुणाश्रु टपकने लगे। वे पतिदेव से बोलीं —"तो क्या आप अपने पड़ोसी को यों ही भटकने देंगे?" "अच्छा, इसकी युक्ति सोचूँगा।" इतना कहकर लालाजी दूकान को चले गये।

[illegible] ही उन्होंने एक पोटली में निन्यानवे रुपये बाँधकर नन्दू के घर में डाल देने को कहा। पत्नी ने बिना कुछ किन्तु परन्तु किये उनकी आज्ञा का पालन किया। नन्दू ने पोटली उठाकर [illegible]

दो-दो आना करके उसने रुपया पूरा किया और सौ की पूरी पोटली को वह सतृष्ण नेत्रोंसे देखने लगा। फिर सोचा कि ऐसी एक और हो तो कैसा ? बस उसने जोड़ना आरम्भ किया। अब हलवा और रसगुल्ले कहाँ ? वही दाल-भात और रोटी का सादा भोजन रह गया। ज्यों-ज्यों पोटली में रुपये बढ़ने लगे, त्यों-त्यों नन्दू के भोग-विलास घटने लगे। लालाजी ने पन्द्रह दिन पश्चात् पत्नी से पूछा कि अब नन्दू का क्या ढंग है। उन्होंने लालाजी की सराहना करते हुए कहा—नाथ ! अब तो वह निन्यानवे के फेर में पड़ गया है।"

## ९—वायु-यान

विचार-सूची :—

( १ ) पुष्पक विमान और हवाई जहाज।
( २ ) गुब्बारे और हाइड्रोजन गैस का आविष्कार।
( ३ ) वायु-पोत या मोटर मशीन से चलनेवाले गुब्बारे।
( ४ ) वायुयान और गुब्बारों का अन्तर।
( ५ ) वायुयानों की बनावट
( ६ ) व्यापार और जीवन पर प्रभाव
( ७ ) आकाश-विहार
( [illegible] ) व्योमयान का भयङ्कर रूप

पुष्पक विमान पर चढ़कर राम लङ्का से अयोध्या आये थे, यह कथा आज से २५ वर्ष पूर्व स्वप्न की सी बात प्रतीत होती थी। किन्तु, आज घरघराते हुए हवाई जहाज जब हमारी नजरों के ऊपर मँडराते हैं, तब हमें वह स्वप्न प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है। विज्ञान की माया विचित्र है। कुछ वर्ष पूर्व, लोग जिन बातों पर हँसते थे, आज वे हमारे दैनिक जीवन का अङ्ग हो रही हैं।

वायुयानों की कथा के पूर्व गुब्बारों तथा वायु-पोतों की कहानी जानना बड़ा जरूरी है। ईसा की अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में बैलून यानी गुब्बारे का आविष्कार हुआ, इसके पश्चात् एक प्रकार की गैस का अन्वेषण हुआ, जिसे हाइड्रोजन गैस कहते हैं। इसी गैस के द्वारा ये गुब्बारे हवा में तैरते-फिरते थे। जिस प्रकार पूर्व काल में नौकाएँ तथा जहाज पालों द्वारा पानी पर चलते थे, उसी प्रकार ये गुब्बारे हाइड्रोजन गैस के बल पर हवा के खिलौने थे।

बीसवीं सदी के आरम्भ में एक नया आविष्कार हुआ। अग्निबोट की तरह इन गुब्बारों का मोटर मशीन से चलाना संभव हो गया। जर्मनी के काउण्ट जैपलिन नामक व्यक्ति ने यह आविष्कार किया और उसीके नाम पर ये वायु-पोत "जैपलिन" के नाम से प्रसिद्ध हुए तथा जलपोतों की भाँति चलने लगे। जर्मन-महायुद्ध में इनसे काम लिया गया था। परन्तु, ये वायु-पोत वायु-यान नहीं कहे जा सकते।

वायु-यान की बात ही और है। गुब्बारे और वायु-पोत हवा से हल्की चीजें हैं, और वे हवा में हाइड्रोजन गैस के सहारे उड़ते हैं। परन्तु, वायु-यान हवा से भारी पदार्थ है और वह मशीन के बल से हवा को चीरता हुआ जाता है। यही दोनों में अन्तर है। वायु-यान वास्तव में हवा में उड़नेवाली मशीन है।

वायुयानों की करामात हम अपनी आँखों देख ही रहे हैं। जिस पृथ्वी की प्रदक्षिणा की कल्पना भी कठिन थी, वह इन वायु-यानों ने प्रत्यक्ष करके दिखा दी। अटलांटिक महासागर को कितने ही जहाज़ पार कर चुके। करांची से लण्डन को डाक इन्हींके द्वारा जाने लगी। देश विदेशों का अन्तर अब कुछ दिनों का सफर रह गया। भारत से इंग्लैंड जाने में अब केवल पाँच दिन लगते हैं।

अभी इन वायुयानों का आविष्कार हुए २५ ही वर्ष हुए हैं, इतने ही अल्पकाल में इनने अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। व्यापार पर तो इनका विश्व-व्यापी प्रभाव पड़ेगा ही, हमारे जीवन और हमारे आदर्शों में भी एक भारी विप्लव कर डालेगा। जो परि-वर्तन रेलों और तार के सहारों ने हमारे जीवन में किया है, उससे कहीं अधिक व्यापक परिवर्तन जीवन में इन वायुयानों द्वारा होने की सम्भावना है

वह दिन दूर नहीं जब [illegible]
[illegible]

जैसी कि आशा है, आकाश में मेले लगा करेंगे; उत्सव हुआ करेंगे; खेल कूद होंगे और आकाश हमारा घर-आँगन हो जायगा।

रणक्षेत्र में इन विशालकाय व्योमचारियों से जब अभियान हुआ करेगी, तब तो प्रलय ही मच जायगा। कोई गढ़, कोई दुर्ग, कोई पर्वत, कोई सीमान्त प्रदेश अथवा सागर का विशाल वक्षस्थल भी इनकी गहरी मार से शरण न दे सकेगा। गत महायुद्ध में तो इनकी उम्र तीन ही चार वर्ष की थी, तभी इन्होंने क्या कम गजब ढाया था। अब तो ये तरुण हो गये हैं। भगवान् न करे कि कभी कभी इस प्रलय-कार्य में प्रवृत्त होकर ये अपना दुष्ट रूप दिखावें।

## १०—वर्षा-विहार

गर्मी की तपन से तपी हुई पृथ्वी के ओठों पर वर्षा की बूँदें पड़ते ही उसका मुख हरा-भरा हो गया। उसके झुलसे हुए गात्र पर रोमावली-सी खड़ी हो गई। वृक्षों और बेलों पर बहार आ गई। घरों के भीतर वा खस की टट्टियों से बाहर निकलकर विहार करने के दिन भी आ गये। चारों ओर जंगल में मंगल होने लगा। प्रकृति ने अपनी धानी साड़ी पहन ली और उसके दूत बादल प्रियतम के संदेश ले-लेकर दौड़ने लगे। कोयल की 'कुहू कुहू' और पपीहा की पी पी ध्वनि हृदयों में चुभने लगी।

कभी वन-उपवन-से लगते हैं। कभी मन बहलाते हैं, कभी प्रलय मचाते हैं। उनके पास सब से सुन्दर खिलौना एक है। वह है इन्द्र-धनुष। बस, उनकी उस धनुही में विधाता की चित्रकारी समाप्त हो गई है। उसे देखकर वर्षा के आँगन में फिर और कुछ देखने को नहीं रह जाता। हाँ, बिजली की चमक में प्रकृति सुन्दरी के कङ्कण और जुगनुओं के रूप में उसके केश-कलाप के पुष्प गुच्छ भी मनोहारिणी छवि देते हैं।

## ११—शरीर-रक्षा

विचार-तालिका :—

(१) आत्मा का मन्दिर ; शरीर-यंत्र।
(२) धर्म का प्रथम साधन।
(३) स्वाभाविक और कृत्रिम जीवन : एक राजा और कणाद ऋषि।
(४) जातीय प्रतिष्ठा : अर्जुन और उर्वशी : दधीचि।
(५) सरल जीवन और उच्च विचार
(६) स्वास्थ्य के नियम
(७) तन, मन, धन का सम्बन्ध

शरीर आत्मा का निवास है। उसका मन्दिर है। यही वह रथ है जिसपर बैठकर मनोरथ इन्द्रियों के घोड़े दौड़ाते और आकाश पाताल की सैर किया करते हैं। यदि इसके पहिये टूटे हैं

जायँ—उनकी कमानियों में दम न रहे—तो इतने दच्चे लगें कि सारी कमर रह जाय और जीवन-यात्रा दूभर हो जाय। इसके कल-पुर्जे कील-काँटे इतने पेचीदा हैं कि उनका सँभालना ऐसी वैसों का नहीं, सूरे-पूरों ही का काम है। कुशल कारीगर ही इसे ठीक किया करता है और इसका नव-निर्माण (Overhauling) भी कुछ अर्थ रखता है। जो इसकी धुरी का काँटा ठीक रखें और उचित रूप से इसकी देखभाल, साज-सँभाल करते रहते हैं, उन्हीं के लिए यह हलका और सुखावह सिद्ध होता है।

"शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्।" अर्थात् निश्चय ही शरीर धर्म का सब से पहला साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं, तो मन स्वस्थ नहीं रह सकता; मन स्वस्थ नहीं, तो विचार स्वस्थ नहीं होते, और जब विचार स्वस्थ नहीं तो, धर्म की साधना कहाँ? इसलिए, शरीर को स्वस्थ रखना हमारा परम कर्त्तव्य है, इसके बिना जीवन सुखमय हो ही नहीं सकता। बालक से लेकर बूढ़े तक और राजा से लेकर सन्यासी तक सब को शरीर-रक्षा का ध्यान रखना पड़ता है। शरीर स्वस्थ न हो तो सांसारिक भोग व्यर्थ हो जाते हैं। [illegible] पदार्थ वस्त्र आभूषण इत्यादि [illegible] उसमें फीकापन ही [illegible] है।

[illegible] इस मन्दिर को यदि [illegible] परन्तु, इस

पाप को हममें से कितने पाप समझते हैं ? अतिमात्रा में भोजन, विहार करना तो हमारे लिए साधारण-सी बात हो गई है, वरन् ऐसा न करें तो हम समझते हैं कि हमने शरीर का सुख ही क्या भोगा। प्रकृति ने हमारे खाद्य पदार्थों को जिस रूप में उत्पन्न किया है, उसमें हमने इतने परिवर्तन कर डाले हैं, उनसे इतने व्यञ्जन बना डाले हैं कि जीभ उनकी ओर ऐसी दौड़ती है कि रोके नहीं रुकती। हमने एक स्थान पर पढ़ा था कि एक राजा के यहाँ कुशल वैद्य इसलिए रखे जाते थे कि वे सुस्वादु भोजन के पश्चात् उसे वमन (उलटी) करा दिया करें, जिससे कि वह फिर शीघ्र ही अन्य स्वादिष्ट पदार्थ खा सके। इस चटोरेपन का फल यह हुआ कि कुछ काल में ही उसकी आँतें खोखली हो गईं और वह जीवन की घड़ियाँ गिनने लगा। दूसरी ओर महर्षि कणाद को देखिए। वे परिश्रम के साथ एक-एक कण बीनकर सादा भोजन करते थे। आज उनका रचित वैशेषिक शास्त्र संसार को चकित कर रहा है। सरल जीवन और कृत्रिम जीवन के ये स्पष्ट उदाहरण हैं। दूर क्यों जायँ, अपनी ओर ही न देखें। प्रातःकाल से लेकर संध्या तक हममें से बहुतों का मुँह बकरी की भाँति चलता ही रहता है। आँतों को आराम देना तो हम जानते ही नहीं। समझते हैं पेट खाली रहा [illegible] शरीर के साथ अत्याचार नहीं, पाप [illegible] है कि हम बहुधा खाने के लिए जीते [illegible]

शरीर का सम्बन्ध केवल अपने ही तक होता, तो भी कुछ बात न थी। मुख की तेजस्विता, शरीर की गठन और अङ्गों की चारुता पर जाति तथा देश की प्रतिष्ठा भी अवलम्बित है। जब हम किसी अँगरेज, फ्रेंच, जापानी, या जर्मन जाति के बच्चे, युवक या युवती को देखते हैं और अपने यहाँ के पीले-पीले चेहरों, और झुके हुए कन्धों तथा अस्थि-पञ्जरों से तुलना करते हैं, तो हृदय में हूक उठने लगती है। उस समय हम सोचते हैं कि इस प्रकार की दरिद्र-मूर्तियों को लेकर भारतवर्ष किसके सामने मुँह उठा सकता है। एक समय था, जब इसी भारत का पुत्र अर्जुन सुरलोक में गया, तब उसके तेजस्क वदन को देख अप्सरा उर्वशी उस पर मुग्ध हो गई। अर्जुन ने भी विनीत भाव से कह दिया—'कुल कलंक जनि देउ मातु हम भारतवासी।' आज हममें से कितने कुल-कलङ्क नहीं बन गये? जिस अवस्था में अन्य जातियों के मनुष्य युवा प्रतीत होते हैं, उसीमें हम बूढ़े जान पड़ते हैं। बहुत से तो जान भी नहीं पाते कि यौवन कब आया और कब गया। यह सब शरीर की उपेक्षा का परिणाम नहीं तो क्या है? जिस आर्य-जाति के ऋषि दधीचि की हड्डियाँ लेकर सुरपति इन्द्र ने अपना वज्र बनाया, उसकी यह दशा देख कलेजा ऊपर को आता है।

सरल जीवन और उच्च विचार हमारे मनस्वी पूर्वजों का मूलमन्त्र था और उसका सिद्धि स्वस्थ शरीर पर निर्भर है।

स्वास्थ्य-रक्षा के नियम जानने के लिए यों तो विज्ञान की एक शाखा आयुर्वेद अलग ही है, परन्तु कुछ मोटी-मोटी बातें हैं, जिनपर ध्यान रखने से स्वास्थ्य सहज नहीं बिगड़ता। शरीर की रचनाका आवश्यक ज्ञान प्रत्येक नर-नारी को होना चाहिए फिर अपने-अपने शरीर की विशेष बातों पर उसे स्वयं ध्यान रखना चाहिए। इतना होने पर जीवन के मुख्य आधार वायु, जल और भोजन-वस्त्र का उचित रूप से काम में लाना है। इनकी उत्तमता परमावश्यक है। शरीर की शक्ति चलने, फिरने, करने में व्यय होती रहती है। इसकी पूर्ति के लिए नींद स्वाभाविक साधन है। गहरी नींद आने से हमारा रक्त फिर से वेगपूर्वक चलने लगता और हममें स्फूर्ति आ जाती है। इसके अति-रिक्त शरीर के रग-पुट्ठों को दृढ़ रखने तथा नसों में रक्त-सञ्चार के लिए किसी न किसी प्रकार का व्यायाम अत्यावश्यक है। सब दवाएँ छोड़कर केवल व्यायाम करने से ही शरीर नीरोग रह सकता है। व्यायाम की मात्रा भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है। [illegible] का विचार करके व्यायाम करने से ही लाभ होता है। [illegible] के समान स्वास्थ्य के कुछ नियम नीचे लिखे जाते हैं —

[illegible]

[illegible]

[illegible]

है। रात के समय मुँह ढँककर न सोया जाय। मकान में काफी दरवाजे और खिड़कियाँ हों और वे खुले रहें। साँस सदैव नाक से ली जाय। गहरी साँस ली जाय और हवा को कम छोड़ा जाय।

( २ ) स्वच्छ और सर्द पानी पिया जाय। यदि जल स्वच्छ न हो तो औटाकर वा फिटकरी डालकर स्वच्छ कर लिया जाय। स्नान को भी पूर्ण महत्व दिया जाय। ठंडा वा ताजा जल ही स्नान के लिए अधिक उपयोगी है। रोगियों को गरम जल काम में लाना भी हितकर है। स्नान के पश्चात् शरीर को स्वच्छ और मोटे कपड़े से खूब रगड़कर पोंछ लिया जाय।

( ३ ) भोजन खूब भूख लगने पर किया जाय, परन्तु भूखा भी न मरा जाय। एक बार का भोजन पचने पर ही दूसरी बार कुछ खाया जाय। दाल, भात, रोटी, शाक आदि का सादा, सुपच और पौष्टिक भोजन ही किया जाय। बहुत से मिश्रित पदार्थ वा मसालों के बने हुए भोजनों से बचा जाय। अपनी रुचि के अनुकूल पदार्थ चुन लिए जायँ और एक ही प्रकार का भोजन लगातार न किया जाय। बदलते हुए अन्न शाक आदि व्यवहार में लाये जायँ। भोजन के साथ स्निग्ध पदार्थ, जैसे घी आदि अवश्य खाये जायँ। दूध और फल स्वाभाविक तथा सात्विक भोजन हैं। भोजन नियत समय पर किया जाय, चबा-चबाकर किया जाय और भोजन के पश्चात दाँतों को साफ कर लिया जाय।

(४) वस्त्र सादे किन्तु साफ सुथरे हों। तंग या कसे हुए न हों। शरीर रोगी न हो तो व्यर्थ बहुत से वस्त्रों की आवश्यकता नहीं।

(५) व्यायाम नित्य और नियमित रूप से किया जाय। उतना ही व्यायाम किया जाय, जिससे थकावट न जान पड़े। प्रातःकाल का समय इसके लिए सर्वोत्तम है। रात का समय ठीक नहीं। व्यायाम के पूर्व स्नान किया जाय, अथवा व्यायाम के पश्चात् जब कि रक्त का सञ्चार साधारण रीति से होने लगे। भोजन के पश्चात् व्यायाम कदापि न किया जाय, न व्यायाम के पश्चात् तुरत भोजन किया जाय।

(६) गहरी और शान्त निद्रा स्वास्थ्य की सहचरी है। ६ से ८ घंटे तक सोना आवश्यक है। दस ग्यारह वर्ष तक के बच्चों को कम से कम १० घंटे सोने दिया जाय।

(७) नशीले द्रव्यों से जहाँ तक हो बिल्कुल बचा जाय।

इन बातों पर ध्यान देने से स्वास्थ्य ठीक रहेगा। आहार और विहार में सदैव संयम की बड़ी भारी आवश्यकता है। जो लोग वेदान्त की लटक में शरीर-सेवा को मूर्खता समझते हैं, वे भूलते हैं। तन, मन और धन का साथ है। जिसके पास पुष्ट तन नहीं, उसके पास विकसित मन या मस्तिष्क नहीं। जिसके पास मन नहीं उसके पास धन या वैभव नहीं। यह बात शास्त्रोक्त है। इसलिए, शरीर-संगठन की ओर प्रयत्न

है। रात के समय मुँह ढँककर न सोया जाय। मकान में काफ़ी दरवाज़े और खिड़कियाँ हों और वे खुले रहें। साँस सदैव नाक से ली जाय। गहरी साँस ली जाय और हवा को कम छोड़ा जाय।

(२) स्वच्छ और सर्द पानी पिया जाय। यदि जल स्वच्छ न हो तो औटाकर या फिटकरी डालकर स्वच्छ कर लिया जाय। स्नान को भी पूर्ण महत्व दिया जाय। ठंडा या ताज़ा जल ही स्नान के लिए अधिक उपयोगी है। रोगियों को गरम जल काम में लाना भी हितकर है। स्नान के पश्चात् शरीर को स्वच्छ और मोटे कपड़े से खूब रगड़कर पोंछ लिया जाय।

(३) भोजन खूब भूख लगने पर किया जाय, परन्तु भूखा भी न मरा जाय। एक बार का भोजन पचने पर ही दूसरी बार कुछ खाया जाय। दाल, भात, रोटी, शाक आदि का सादा, सुपच और पौष्टिक भोजन ही किया जाय। बहुत से मिश्रित पदार्थ या मसाले के बने हुए भोजनों से बचा जाय। अपनी रुचि के अनुकूल पदार्थ चुन लिए जायँ और एक ही प्रकार का भोजन लगातार न किया जाय। बदलते हुए अन्न शाक आदि व्यवहार में लाये जायँ। भोजन के साथ स्निग्ध पदार्थ, जैसे घी आदि अवश्य खाये जायँ। दूध और फल स्वाभाविक तथा सात्विक भोजन हैं। भोजन नियत समय पर किया जाय, चबा-चबाकर किया जाय और भोजन के पश्चात् दाँतों को साफ़ कर लिया जाय।

(४) वस्त्र सादे किन्तु साफ़ सुथरे हों। तंग या कसे हुए न हों। शरीर रोगी न हो तो व्यर्थ बहुत से वस्त्रों की आवश्यकता नहीं।

(५) व्यायाम नित्य और नियमित रूप से किया जाय। इतना ही व्यायाम किया जाय, जिससे थकावट न जान पड़े। प्रातःकाल का समय इसके लिए सर्वोत्तम है। रात का समय ठीक नहीं। व्यायाम के पूर्व स्नान किया जाय, अथवा व्यायाम के पश्चात् जब कि रक्त का सञ्चार साधारण रीति से होने लगे। भोजन के पश्चात् व्यायाम कदापि न किया जाय, न व्यायाम के पश्चात् तुरत भोजन किया जाय।

(६) गहरी और शान्त निद्रा स्वास्थ्य की सहचरी है। ६ से ८ घंटे तक सोना आवश्यक है। दस व्यारह वर्ष तक के बच्चों को कम से कम १० घंटे सोने दिया जाय।

(७) नशीले द्रव्यों से जहाँ तक हो बिल्कुल बचा जाय।

इन बातों पर ध्यान देने से स्वास्थ्य ठीक रहेगा। आहार और विहार में सदैव संयम की बड़ी भारी आवश्यकता है। जो लोग वैद्यक की लत में शरीर-रोग को सुरक्षित समझते हैं, वे भूलते हैं। तन, मन और धन का साथ है। जिसके पास तन नहीं, उसके पास स्थिर मन का अस्तित्व नहीं; जिसके पास मन नहीं उसके पास धन का ठिकाना नहीं। यह [illegible] है। इसलिए शरीर-संरक्षण [illegible]

दृष्टि होनी चाहिए। संक्षेप में इसके तीन साधन हैं—संयम, नियम और व्यायाम।

## १२—किसान

मिट्टी से रत्न उत्पन्न करना किसान का ही काम है। उसकी पसीने की कमाई में सब का साझा है। वह एक रूप से मनुष्य मात्र का अन्नदाता और पशु-पक्षियों तक का पालनकर्ता है। दिन भर परिश्रम करके जब वह सोने को जाता है, तब वह भी नहीं सोचता कि मैंने संसार का क्या उपकार किया। उसके स्वार्थ में भी परार्थ है, उसकी सेवा बड़ी निष्काम है। कहते हैं कि जैसा धान्य होता है वैसी ही बुद्धि बनती है, अर्थात् जिस प्रकार की कमाई का पैसा होता है, आचार-बुद्धि पर उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है। एक जुआरी वा चोर के धान्य से कुमति, और मेहनती मज़दूर के धान्य से सुमति उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से, किसान का धान्य बड़ा उत्तम और सुबुद्धि-जनक है। उसके जीवन में साधु भाव ही प्रधान है।

उसकी दिनचर्या तो देखिए। प्रातःकाल उठना, खेत पर जाना, गाय, बैल आदि की सेवा करना, अपने ही हाथों से उत्पन्न किये हुए शुद्ध अन्न का भोजन करना और कठोर परिश्रम करके वसुन्धरा पर हरे हरे पौधे उगाना, कैसे आनन्दमय कृत्य हैं। फल फलों से युक्त खेतों में अपने परिश्रम को फलता

खाने को मिलता है, न लागत का दाम शेष रहता है। यदि दुर्भिक्ष पड़ जाय, तो उनके प्राणों ही पर आ बनती है। दिन दिन उनके बल का ह्रास हो रहा है। दूध-घी की तो बात ही क्या, बेचारे बहुतेरे तो छाछ को भी तरसते हैं। छोटे-छोटे रोगों को भी सहन करने का बल उनमें नहीं रह गया, फिर भी मिथ्याभिमान पीछा नहीं छोड़ता। ऋण ले-लेकर विवाह आदि में अपव्यय करते हैं और उसके दुष्परिणाम भोगते हैं। "बुभुक्षित: किं न करोति पापं" अर्थात् भूखा क्या पाप नहीं कर डालता? इस उक्ति के अनुसार उनका आचारिक पतन भी आरम्भ हो गया है। अपने अनन्त समय को वे आलस्य में बिता देते हैं।

जापान के किसानों की ओर देखिए। वहां भूमि की इतनी कमी है कि कहीं-कहीं तो एक-एक परिवार के भाग में एक खेत आता है। परन्तु, उसीमें वे सब कुछ प्राप्त करते हैं। किसी जापानी के पास एक खेत भी है, तो उसीके कोने में एक क्यारी छोटे से उपवन की भी होगी। बचे हुए समय में उनके बाल बच्चे और वे स्वयं रेशम आदि के वस्त्र बुनकर या और कोई घरेलू धन्धा करके द्रव्य कमाते हैं। हमारे यहां भी सूत कातना मात्र के बड़े-बड़े घरानों का धन्धा था, परन्तु हम अब उसे छोड़ बैठे हैं। हम बड़े बन बैठे हैं और हमारी आँखों पर चोट पड़ रही है। हम यह भूल गये हैं कि बड़प्पन का पिता परिश्रम है।

समय ही धन है। अमेरिका आज खेती की ही बदौलत संसार का महा समृद्धिशाली देश है। वहाँ का किसान मोटर में बैठकर अपने खेतों की सैर करता, और वहाँ के बड़े-बड़े जमींदारों को मोल ले सकता है। किन्तु, काम के समय हम उसे घुटन्ना पहने, और कुदाल हाथ में लिये अपने नौकरों के साथ खेत में पाते हैं। वह अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों का मुँह नहीं ताकता, वरन् अपना भाग्य अपने ही हाथों बनाता है।

हमारे किसान भाई भी कोरी प्रतिष्ठा छोड़कर यदि अपने समय को काम में लावें, अपने काम में अपने को स्वतंत्र कर लें, तो कोई कारण नहीं कि उनके दुख दूर न हो जावें। कोई आसमान से उनके कष्ट छुड़ाने नहीं आवेगा, अपना भाग्य उन्हें आप बनाना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि देश के नेताओं तथा सरकार का ध्यान इस ओर प्रतिदिन बढ़ रहा है, तो भी अपने दोष तो आप ही मिटाने होंगे। काम तो हमें ही करना होगा। इस रत्नगर्भा भारत-भूमि में इतना [illegible] है कि इससे केवल यह देश ही धन-धान्य पूर्ण नहीं हो सकता, वरन् [illegible] भेज भेजकर विश्व का [illegible] का व्यापार, यहाँ का उद्यम [illegible] पर ही निर्भर है। यदि हमारा [illegible] ही झुक जाय, तो हमारे [illegible] मारे-मारे न फिरें। [illegible]

खाने को मिलता है, न लागत का दाम शेष रहता है। यदि दुर्भिक्ष पड़ जाय, तो उनके प्राणों ही पर आ बनती है। दिन दिन उनके बल का ह्रास हो रहा है। दूध-घी की तो बात ही क्या, बेचारे बहुतेरे तो छाछ को भी तरसते हैं। छोटे-छोटे रोगों को भी सहन करने का बल उनमें नहीं रह गया, फिर भी मिथ्याभिमान पीछा नहीं छोड़ता। ऋण ले-लेकर विवाह आदि में अपव्यय करते हैं और उसके दुष्परिणाम भोगते हैं। "बुभुक्षित: किं न करोति पापं" अर्थात् भूखा क्या पाप नहीं कर डालता? इस उक्ति के अनुसार उनका आचारिक पतन भी आरम्भ हो गया है। अपने अनन्त समय को वे आलस्य में बिता देते हैं।

जापान के किसानों की ओर देखिए। वहां भूमि की इतनी कमी है कि कहीं-कहीं तो एक-एक परिवार के भाग में एक [illegible] आता है। परन्तु, उसीमें वे सब कुछ प्राप्त करते हैं। किसी जापानी के पास एक खेत भी है, तो उसीके कोने में एक छोटे-छोटे से उपवन की भी होगी। बचे हुए समय में उनके घर बच्चे और वे स्वयं रेशम आदि के वस्त्र बुनकर या और कोई धंधा करके द्रव्य कमाते हैं। हमारे यहां भी सूत कातना [illegible] के घर-घर [illegible] का धन्धा था, परन्तु हम अब उसे छोड़ बैठे हैं। [illegible] हमारी आंखों पर [illegible] [illegible] का बिना [illegible] है।

है, और हम भूखे नंगे विदेशों में मजदूरी करके पराई ठोकरें खाते हैं ? इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि के किसानों के परिश्रम तथा उनके ग्राम्य-सुखों की कल्पना भी हम लोग नहीं करते। जो सुख वहाँ के किसानो को है, यहाँ के अमीरों और रईसों को नहीं, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। वहाँ के ग्रामों के झोपड़ों लक्ष्मी निवास करती है। वहाँ के किसानों की सुख-श्रीमा पालों की स्पर्द्धा का कारण होती है। यदि हम भी वैसा परिश्रम करें, वैसी ही तत्परता से काम लें, तो हमारा स्वर्ग हमारे हाथ है। विश्वास रखिए, परिश्रम सदैव फल देता है।

## १२—एक प्यारा चरित्र

[लक्ष्मण]

पूर्व विचार :—

(१) चरित्र की आन।
(२) सच्चा स्वरूप।
(३) युद्ध-प्रियता और निर्भीकता।
(४) नटखटपन और आज्ञा का अंकुश।
(५) चारित्रिक विजय।
(६) अनन्य सेवा।
(७) जीवन का फल।

लक्ष्मण ! तुम्हारे चरित्र में एक अनोखी आन है। राम लोक-ललाम हैं; कवि की कृति के नायक हैं। भरत नायक न सही, पर रामायण के प्राण हैं। और तुम ? तुम तुम्हीं हो। तुम्हारी बात में कुछ बात है और तुम्हारे ढंग में कुछ रंग। तुम राम के अनुजीवन हो। त्याग के तन हो, तपस्या के धन हो; वीरता की मूर्ति हो, पराक्रम की स्फूर्ति हो। तुम सेवा के अवतार हो, भ्रातृ-भक्ति के सिंगार हो; ओज की ओस हो, श्रद्धा के कोष हो। तुम ब्रह्म-तेज के रोष हो और क्षात्र-साहस के निर्घोष हो। तुम्हारी तड़प में एक कड़क है और तुम्हारी वाणी बड़ी बेधड़क है।

तुम्हारे सच्चे स्वरूप का दर्शन हमें स्वयंवर-सभा में हुआ। उपस्थित योद्धाओं पर गाज गिर चुकी थी। क्षत्रिय-समाज राजा जनक की "वीर-विहीन मही मैं जानी" को सह चुका था। तुम्हारे कानों में वह चोट पड़ी और तुम तड़प गये। राजा जनक ज्ञानी होंगे अपने घर के; विदेह होंगे ऋषियों के लिए, मुनियों के लिए। तुम्हारे लिए वे अनुचित वक्ता थे। क्षत्रियत्व का अपमान तुम्हारा अपमान था—रघुकुल का तिरस्कार था। यह बात सब से पहले तुम्हींको सूझी। राम के इशारे से तुम लोहू का घूँट पी गये, पर तुम्हारे सिंह-गर्जन से आकाश गूँज गया, जनक सिटपिटा गये। "कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ" में तुम्हारा [illegible] खुल-खुलकर खेल रहा है। [illegible] काँचे घट जिमि डारौं फोरी" में फूट पड़ा है।

क्षत्र कुल के काल जामदग्न्य परशुराम के ब्रह्मतेज और महाक्रोध के सामने बड़े बड़े योधा तितर बितर हो जाते हैं, और तुम्हें विनोद सूझता है। तुम्हारा 'दूध मुख' वहाँ वज्र मुख बन जाता है। कोई डरे, कोई दबे, कुछ हो तुम्हें भय नहीं। तुम्हारे लिए तो जो लड़ने आये, फिर वह शङ्कर ही क्यों न हों, तुम उसे छकाने को तैयार हो। तुम वहाँ उसका पद नहीं देखते, मद नहीं देखते। वह तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी है और तुम्हें उससे दो-दो हाथ करने में रस आता है। चाहे राम 'नयन तरेरें' वा 'लोक अनुचित पुकारें' तुम देह में से निकले ही पड़ते हो।

तुम नटखट भी कम नहीं। दास दासियों तक पर हाथ छोड़ देते हो। तभी तो मन्थरा की भुनभुनाहट पर कैकेयी को सन्देह होता है कि "दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।" यहाँ इतने हो कि चूकते अपने पिता तक से नहीं। सुमंत्र से दशरथ के विषय में, न माने, कुछ अट सट कह ही दिया। इतने पर भी अङ्कुश मानते हो। तुम्हारे जीवन सर्वस्व राम हैं। राम की आँखों का एक डोरा तुम्हारे रोष रूपी ज्वालामुखी के उभार को झाग-सा विठा देता है।

तुम राम को जानते हो और राम तुम्हें। वनवास हुआ। सीता व्याकुल हो उठीं। बड़े उत्तर प्रत्युत्तर के पश्चात् उन्होंने राम पर विजय पाई। तुम भी वहाँ गये और "देह गेह सब सन" तृण तोड़कर "चितवन टाढ़े," मे अपना जादू राम पर डाल

दिया। उन्होंने कुछ कहा भी तो "मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला" में बाजी मार ले गये। तुम्हारे उस मौन में तुलसी ने एक और मोती छिपा दी।

तुम्हारी सेवा जीवन पथ का एक प्रदीप है। राम सीता सो रहे हैं और तुम धनुष बाण लिये वीरासन पर बैठे उनकी शरीर-रक्षा कर रहे हो। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं; एक वर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं; पूरे चौदह वर्ष। यह अनन्य भक्ति जगतीतल पर अलभ्य है। चित्र-कूट में राम के ललाट पर चिन्ता की रेखा झल-की नहीं कि तुमने भरत जैसे धर्म-धुरन्धर को भी उलटी सीधी सुना डाली। तुम्हारे लिए "प्रकट करउँ रिस पाछिल आजू" का अवसर आ गया। तुम्हारे हृदय में उबाल आया, परन्तु राम के "सुनहु लषन भल भरत सरीसा। विधि प्रपञ्च महँ सुना न दीसा।" कहते ही बैठ गया। किष्किन्धा में राम के "सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी" कहते ही तुम उसके सिर पर जा धमके। राम की मैत्री का भी ख्याल न करते हुए, उसे खूब फटकारा। पञ्चवटी में तनिक सङ्केत मिला कि शूर्पणखा के नाक कान न थे।

मेघनाद-वध में तुम्हारे अखण्ड व्रत और बल का पता चला। जिसपर इन्द्र का वज्र भी कुण्ठित हो गया था, उसके वध में तुम्हीं समर्थ हुए। तुम्हारे शक्ति लगने पर राम का करुण-रोदन तुम्हारी सेवा और उनके स्नेह-सर्वस्व का सजीव चित्र है। तुम्हारे

लिए "जैहों अवध कवन मुँह लाई" और " जो जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू। पिता बचन नहिं मनतेउँ ओहू।" में तो वे सीता ही नहीं, पूज्यचरण दशरथ को भी एक ओर उठाकर रख देते हैं। तुम्हारे जीवन का फल यहाँ मिल जाता है।

भ्रातृ-भक्ति में तुम्हारी अनन्यता ही नहीं, अन्धता भी थी। सगर्भा सीता को जनशून्य वन में छोड़ते भी तुम्हें आगा पीछा न हुआ। तुम ग्लानि से गल गये; सङ्कोच से दब गये, पर काम कर गये। तुमने भाई का मान निभाया और अन्त तक निभाया। एक बार सीता के मर्म-वचनों से विद्ध होकर तुम रामाज्ञा का उलङ्घन कर गये थे—सीता को अकेली छोड़ चले गये थे। क्या उसी कारण इस अन्याय पर भी तुम न बोले। राम ने जब सुग्रीव आदि की बात मानकर समुद्र से प्रार्थना करना आरम्भ किया था, तब तुमसे न रहा गया था। 'कायर मन कर एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।' तुमने कह ही डाला था। यदि सीता परित्याग पर भी लोकमत के विरुद्ध तुम्हारा स्वर ऊँचा उठा होता तो हमें तुमसे कुछ कहना न था। कौन जाने तुम्हारे द्वारा इस दु[illegible] का कल्याण हो जाता। तुम्हारा वहाँ [illegible] तुमने [illegible] को कोमलता का [illegible] [illegible] सुमित्रा नन्दन तुम [illegible] तुम्हारे चरित्र में एक

नीचे बिछी हुई मानस-सर की श्वेत तथा शुभ्र जलराशि शुचिता की साक्षात् मूर्ति थी। अनेक मणि-शिलाएँ पड़ी हुई थीं, जिन पर कहीं कहीं मुनियों का मञ्जुल दर्शन मोद का कारण था। हिमालय की मुक्ता-धवल चोटियाँ और कैलाश के दिव्य दर्शन मेरे सौभाग्य के सूचक थे। दिन रात निराली ही छवि रहती थी। प्रकृति का पुण्य भवन ही मानो वहाँ था। उस शुभ्र तथा शान्त तपोभूमि में जन्म लेकर मैं अपने जीवन को धन्य मान रही थी कि एक दिन मेरे पिताजी पानी में गिर पड़े और मैं भी काँपती हुई उनकी गोद में लिपट गई।

जल की शान्ति भी कितनी ? जो नित्य ही पिताजी का पद प्रक्षालन करता था, वही उनकी समाधि स्थली बन गया। जल में पड़े हुए शिलाखण्डों की चोट खाते खाते मैं तो मूर्छित हो गई; पिताजी का क्या हुआ सो मुझे पता नहीं। मुझे जब चेत हुआ तो मैंने देखा कि मैं उनकी गोद से बिछुड़कर आसाम प्रान्त के ब्रह्मपुत्र के मुँह पर एक कोलाहल में पड़ी हुई हूँ। "हाय प्रभु ! तू ने क्या किया, किस जन्म का बदला लिया ?" यह सोच रही थी कि एक लहर के थपेड़े में आकर फिर बह निकली। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ की भूमि प्राग्ज्योतिषपुर के दर्शन करती हुई, मनुष्य के निर्मल प्रेम का अवलोकन करती और पूर्वी बङ्गाल प्रान्त में बही जा रही थी कि पुण्य सलिला भागीरथी से मिलन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रिय बहन से मिल कर

मधुराम बरसता है, उसे अनायास ही पाकर मैंने अपने दुर्दिनों को भी धन्यवाद दिया। इस सुख से कुछ संतोष मिला ही था कि डेल्टा की पंकिल भूमि में मेरे पाँव फँस गये। गंगा और ब्रह्मपुत्र की धारा भी हटकर बहने लगी और मैं वहाँ त्रिशंकु बनी अटकी रही। एक एक दिन करके दो वर्ष बीत गये. सोच लिया कि सड़ सड़कर यों ही मारी जाऊँगी। फिर भी कभी कभी उद्धार की कल्पना किया करती थी. आशा बड़ी बलवती है, यदि यह न हो तो भय से ही मनुष्य के प्राण निकल जाया करें।

कालान्तर में घनघोर वर्षा हुई और नदियों में बाढ़ आई। डेरा भी बह बह गया और मैं उछलती कूदती सागर की गोद में जा पड़ी। वहाँ मेरे ऊपर घोर सङ्कट आया। इधर तो नदी का प्रवाह आगे को ढकेलता था, उधर सागर की लहरें पीछे पटक देती थीं। इनके अन्योन्य-दुरभिक्रमण से मेरा बुरी तरह घर्षण हुआ। मेरी सारी खाल छिल गई। ज्यों त्यों करके समुद्र के क्रोड़ में शान्ति मिली। इतना विशाल जल-विस्तार मैंने पहले कभी न देखा था। उसे देखकर मेरी दृष्टि चौंधिया गई। परन्तु, जल पर तैरती हुई नौकाओं तथा जल-पोतों को देखकर कुछ धैर्य हुआ। समुद्र के तट का अवलोकन करती, और लहरों से टकराती हुई मैं अपने जीवन के दिन पूरे कर रही थी कि एक जलचर की चोंच में अटक गई। समुद्र के

वक्षस्थल को चीरता हुआ वह यान मुझे कोलम्बो ले पहुँचा। वहाँ उसने अपना लङ्गर डाला।

उस बन्धन मे मैं इतना दुखी थी कि मरने की दुआ मना रही थी। इतने ही में एक कारीगर की दृष्टि मुझ पर पड़ी, और वह मुझे अपने घर ले गया। तपोवन से छूटकर लङ्का में मुझे शरण मिली, यह सोच-सोचकर मैं बड़ी खिन्न थी कि इस कारीगर ने मेरा अङ्ग-भङ्ग करके मुझे सजाया। चाकू की नोक से मेरी त्वचा को छीला, और मेरा मुँह मोड़कर मेरे ऊपर रंग-रोगन चढ़ा दिया। कर्मों का फल-भोग समझकर मैंने यह सब कुछ सहा। फिर उसने मुझे एक सेठ के अर्पण कर दिया। उसके साथ साथ मैं रेलगाड़ी पर सवार हुई। इस परिवर्तन को देखकर मैं चकित थी, और भाग्य-लीला पर आश्चर्य कर रही थी। सेठ के साथ मुझे भी रामेश्वर-धाम में शिवजी के दर्शनों का सु-अवसर मिला। भारत-माता के मुकुट से गिरकर फिर उसके चरण छू मैंने समझा कि अभी कुछ पुण्य शेष है। मलयाचल की पुण्य गन्ध का आनन्द लेती, दक्षिणी भारत का भ्रमण करती मैं सेठ के साथ बम्बई पहुँची। इस नगर में मैंने मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार देखा। हर्ष और आश्चर्य की तुलना करने बैठी ही थी कि स्टीमर में बिठाकर कराँची पहुँचाई गई। सेठ अपनी कोठी का सिलसिला कर वहीं से अपनी जन्म-भूमि जैसलमेर को चला। मार्ग में मरुस्थल की धूप खाती,

और ऊँट की पीठ पर चढ़ी जा रही थी। उस समय मेरे सन्ताप की सीमा न थी। 'विधि-गति अति बलवान' के सिवाय मेरे मुख से कुछ न निकलता था।

इस रेगिस्तान में मेरे निर्वासन के तीन महीने राम राम करके बीते। सेठ फिर दिल्ली को चला, और अपने व्यवसाय की धुन में मुझे दिल्ली स्टेशन पर ही भूल गया। डिब्बे में कोई न देख कर, तो एक कुली ने मुझे उठा लिया। वहीं एक कवि की परख-दृष्टि मुझ पर पड़ी, और उसने आठ आने पैसे देकर कुली से मुझे मोल ले लिया। मेरे जीवन के दिन कुछ फिरे। वह मुझे अपने साथ लेकर नैनीताल रहता है। मैं प्रातःकाल पर्वतीय प्रान्त में भ्रमण करती और सन्ध्या को तल्ली-ताल की सैर कर आती हूँ। वह एकान्त भ्रमण करता हुआ जब मुझे घुमाता चलता है, तो मेरे सिरे की नोक पर उसकी दृष्टि एकाग्र हो जाती, और उसमें उसकी कल्पना उड़ान भरने लगती है। उस समय उसके हृदय में जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे विश्व को नया सन्देश देते हैं। यह सुन सुनकर मैं भी फूली नहीं समाती हूँ। वह भी मुझे प्राणों से प्यारी समझता है।

अपने मित्रों के साथ वह कैलास-यात्रा का विचार कर रहा है। यदि ऐसा हुआ, तो मैं फिर कैलास-दर्शन कर सकूँगी, और उसे मानसरोवर में नहाने के लिए [illegible] [illegible] [illegible]

पा जाऊँगी। अवसर पाकर कवि के चरण पकड़ लूँगी और अपनी करुण-व्यथा से उसके हृदय को द्रवित कर मान-सरोवर में ऐसी डुबकी लगाऊँगी कि फिर न निकलूँगी। सम्भव है मेरी स्मृति में उस कवि के कुछ उद्गार भी निकल पड़ें, और मेरा न होना होने से भी बढ़ जाय।

## १५—पशुओं के साथ कठोरता

विचार-तालिका :—

(१) पशुओं के आनन्दमय दृश्य।
(२) पशुओं का सुख-दुःख का ज्ञान।
(३) गाँवों की दशा।
(४) दुधारू पशु।
(५) अमेरिका और भारत की तुलना।
(६) सवारी के पशु।
(७) रक्त निकालने की क्रिया।

कुदकते हुए घोड़ों की गाड़ी में बैठकर चित्त कैसा प्रफुल्लित होता है। फूलों और हरियाली से जगमगाते हुए जंगल में जाते हुए रथ के बैलों के घुँघरुओं की घोर कैसी श्रुति-सुखद होती है। हृष्ट पुष्ट गायों की दुहनी हुई धार की घर्र घर्र ध्वनि मुँह में लार ले आती है। घरनी को छोड़कर चलते हुए शिकारी कुत्तों की उड़ान देखकर विनोद की सीमा नहीं रहती। सुनहरी और रुपहरी

दाँतों के ऊपर रखे हुए रंग बिरंगे हौदे सहित हाथी का झूमना देख हमारा भी सिर झूमने लगता है। ऐसे अवसरों पर हम पशुओं के साथ की गयी कठोरताओं को भूल जाते हैं। परन्तु, यह सिक्के का चमकता हुआ चेहरा है, उसकी दूसरी ओर कुछ और है।

मूक पशु अपनी बात कह नहीं सकता। परन्तु प्रत्येक प्राणी सुख दुख का वैसा ही अनुभव करता है जैसा कि मनुष्य। पशु अपने शरीर को सुख पहुँचाना चाहते हैं और ज्ञान शून्य होने के कारण शारीरिक सुख ही उनका तो सर्वस्व है। मनुष्यता के विचार से न सही, तो उनकी उपयोगिता तथा सेवाओं के विचार से ही उनके प्रति सदय व्यवहार हमारा कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन हम कहाँ तक करते हैं, इस पर तनिक दृष्टिपात कीजिए।

गाँवों में जाइए; बैलों की दशा देखिए। दिन भर हल जोतना पानी खींचना, गाड़ी चलाना उनका काम है। परन्तु, उनके खाने पीने की हमें कितनी चिन्ता है ? ठीक समय पर चारा देना या पानी पिलाना तो विरले ही किसान जानते हैं। पानी के लिए तो उन्हें पोखरों में ही छोड़ दिया जाता है और कभी कभी तो बेचारों को कीचड़ में से चून चूनकर पानी पीना पड़ता है। काम लेते समय किसान के हाथ में एक काँटेदार छड़ी रहती है, जिसे वह उनके पिछले भाग में चुभोता रहता है। कितने ही बैलों के

मग्न होकर सारा दूध प्रसन्नतापूर्वक छोड़ देती हैं। जरा हमा
रों की कथा सुनने के पूर्व हृदय को थाम लीजिए। कलकत्ते
में गायों के छोटे छोटे बछड़ों को इसलिए मार डाला जाता है कि
उनके बाँधने को स्थान कहाँ से आवे, और दूध का कुछ भाग उ
नके पेट में चला जायगा। उनकी खाल में भूसा भरकर गायों
को धोखा दिया जाता है कि मानो उनका बच्चा जीवित है। यह
है पशुओं के अज्ञान से लाभ उठाने की बात हुई। अब और
लीजिए। गायें प्रायः दूधको चढ़ा लेती हैं। इसलिए उनकी
योनियों में उनकी पूँछ का भाग ठेला दिया जाता है और कोई
इंसान तो अपना हाथ तक उसमें डाल देते हैं। इस क्रिया को
यहाँ 'फूका' कहते हैं। इस क्रिया से दूध चढ़ाने में वे असमर्थ
हो जाती हैं। यह है हमारी गोभक्ति का एक नमूना। दूसरा
लीजिए। कुछ दिनों तक [illegible] [illegible] की [illegible] गाय को
खिलाने से उनके पेशाब में एक प्रकार का हरा रंग पैदा हो
जाता है, जो बड़े मोल का होता है। इस [illegible] से अनेक
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

और हमारे लिए बन गये हैं वनस्पति घी, कोकोजिम, और सूअर तथा मछलियों तक की चर्बियाँ। क्या आपको पता है कि इंगलैण्ड में एक गाय का मूल्य २५०००) तक है ?

सवारी और बोझ के पशुओं की दशा पर भी रोना आता है। किराये के घोड़ों में कितने ही ऐसे होते हैं, जो महादुर्बल होते हैं। उन्हें खुराक तो कम दी जाती है और काम लिया जाता है अधिक। यदि तेज न चलें तो बड़ी निर्दयता के साथ उन्हें पीटा जाता है। इक्केवालों की घोड़ों की रास में प्रायः चमड़े के तस्मे बँधे रहते हैं। जब वे उन्हें घुमाकर मारते हैं तो घोड़ों के मर्म-स्थान पर चोट लगती है। कैसा हृदय विदारक दृश्य है! इक्के-वाला तो जीविका के फेर में अन्धा बन ही जाता है, सवारियाँ भी अपना उत्तर-दायित्व नहीं समझतीं। पहले तो मरियल घोड़ों वाले इक्कों में बैठना ही अधर्म, फिर पैसों के लोभ से बैठ भी गये तो जल्द हाँकने की पुकार मचाते हैं। इस प्रकार बैठनेवाले भी पाप कमाते हैं। इस अत्याचार से वे अधिकारी भी नहीं बच सकते, जो ऐसे इक्कों को किसी कारण से पास दे देते हैं। बंबई में लदे हुए बैलों [illegible] की दुर्दशा। गाय उनके [illegible] एक दूसरे से [illegible] हैं और [illegible] हो जाते हैं, परन्तु उनका [illegible] अपने [illegible] है

सच तो यह है कि इस दिशा में हमारा नैतिक पतन इतना हो गया है कि हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रहे।

माँस के लिए भी पशुओं का बलिदान किया जाता है। इस तुच्छ जीवन के लिए यह कठोर कर्म कहाँ तक उचित है इसे तो विचारशील ही जानें, परन्तु मारने की विधियों पर विचार करना आवश्यक है। हमने अपनी आवश्यकताओं के पीछे जीव का तो कुछ मूल्य ही नहीं रहने दिया। इतने पर भी हमारी सभ्यता की डींग बड़ी भारी है। अलमोड़ा के पास एक पहाड़ी है। यदि मैं भूल नहीं करता तो उसका नाम मोती पहाड़ी (Pearl-Hill) है। बड़ा सुन्दर नाम है और काम? "विष-रस भरा कनक घट जैसे" वहाँ जीवित पशुओं का रक्त निकाला जाता है। किसलिए सो पता नहीं। सरकार की ओर से वहाँ एक कार्यालय है, जहाँ पशुओंको खूब मोटा ताजा किया जाता है। फिर एक मशीन द्वारा उनका रक्त निकालते हैं। सुना है रक्त निकलते समय पशुका कोपना रौरव नरक की यंत्रणा की सुध दिलाता है। रक्त निकालने पर फिर उसे खूब खिलाया-पिलाया जाता है, और मोटा होने पर फिर वही पाशविक क्रिया की जाती है। दो तीन बार में बेचारा पशु प्राण दे देता है। कहा जाता है कि रक्त निकालने का यह सुधरा हुआ ढंग है। अधिक से अधिक रक्त चूसने की इस क्रिया को हम क्या कहें? इससे बढ़कर नहीं कि यह मनुष्यता का नग्न नाच है

## १६—कर्तव्य

पूर्व विचार:—

( १ ) कर्तव्य की महिमा और क्षेत्र।

( २ ) कहना और करना ; कर्तव्य की मूर्तियाँ।

( ३ ) कर्तव्य की कठोरता ; राम, प्रताप, हरिश्चन्द्र।

( ४ ) कर्तव्य की मिठास।

( ५ ) कर्तव्य-वीर।

कर्तव्य की महिमा अपार है। इसके मर्म को जान लेना जीवन के तत्व को पहुँच जाना है। मनुष्य मात्र का जन्म कुछ करने के लिए हुआ है और कुछ कर जाना ही कर्तव्य का पालन है। इस प्रकार करनी के अवसर जीवन में प्रायः आते जाते ही रहते हैं। जिस अवसर पर जो करणीय है, वही हमारा कर्तव्य है, धर्म है। करणीय कर्मों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। अनेक सत्कार्य हैं, जिनमें कर्तव्य-पालन के अवसर आते हैं। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उन सत्कार्यों का पूरा करना ही हमारा कर्तव्य है। उदाहरण के लिए, भूखे को अन्न देना कर्तव्य है; गिरते को उठाना कर्तव्य है, दीन-दुखियों की सहायता कर्तव्य है; साधुओं की रक्षा और पापी को दण्ड देना कर्तव्य है, न्याय पर दृढ़ रहना और दया दिखाना कर्तव्य है सत्य, स्वत्व, धर्म, न्याय वा प्रण पर बलि हो जाना कर्तव्य है। इसी प्रकार और भी

कर्तव्य की कठोरता भी बड़ी विलक्षण है। साधारण दृष्टि में तो उसका प्रदर्शन अनौचित्य की सीमा को पहुँच जाता है। परन्तु, जो कर्तव्य पर आरूढ़ है, वही जानता है कि उसे किन भावनाओं से प्रेरित होकर वैसा करना पड़ता है। अग्नि का धर्म है जलाना। इस कर्म में त्रुटि न करना ही उसका कर्तव्य है। फिर यदि गोद का बालक भी भूल से उसके पास पहुँचता और उसे लेने को हाथ बढ़ाता है, तो अग्नि उसे तुरन्त जला देता है। इसमें अधिक निर्दयता और क्या होगी? परन्तु, प्रकृति के नियमों में इतनी अटलता न हो, तो उसका व्यापार ही बन्द हो जाय। तनिक ढील के पीछे न जाने क्या से क्या हो जाय? कर्तव्य जो न करा दे सो थोड़ा है। राम के सामने निरपराधा, सती-शिरोमणि, सगर्भा सीता खड़ी हैं और वे हृदय पर वज्र रखकर लक्ष्मण को उनके परित्याग की आज्ञा दे देते, तथा लक्ष्मण उसे पालन करते हैं। महाराणा प्रताप के राजकुमार और राजकुमारी वन में वृक्षों की छाल के आटे की रोटियाँ खा रहे हैं, उन्हें भी बिल्ली छीन ले जाती है और वे पत्थर बन बैठे देखते हैं। राजा हरिश्चन्द्र का प्राणाधार पुत्र मर जाता है, रानी शैव्या उसे मरघट में लाती है; उसके पास केवल एक ही कफन है; उसका विलाप सुनकर पत्थर पसीजते और वृक्ष रो देते हैं, परन्तु कम्बल और लकुट लिये राजा आते और बिना कर चुकाये उसकी मृतक-क्रिया भी नहीं होने देते हैं। अभी अभी कुछ ही महीनों की बात है,

हो जाता है। इनका सुख यदि इन्हींसे पूछा जाय, तो वे भी कह न सकेंगे, अनुभव ही कर सकते हैं।

जो अपने कर्तव्य-पालन में जितना कुशल है, जितना सचेत है, उसकी महिमा उतनी ही महान् है। उसकी कीर्ति भुवनव्यापिनी और उसका चरित्र सुरभित होता है। उसके चरण-चिह्नों को देख औरों को दिशा सूझती है। "महाजनो येन गतः स पन्था" अर्थात् जिस मार्ग से बड़े जन गये हैं वही मार्ग है, यह मर्यादा ऐसे ही पुरुष-पुङ्गवों द्वारा स्थापित होती है। वे ही जाति, समाज और राष्ट्र के अग्रगन्ता होते हैं। ऐसे ही कर्मवीर मानव-कुल के दीपक होते हैं। वे कर्तव्य-पालन ही से असम्भव को सम्भव कर दिखाते और जीवन में विजय पाते हैं।

## १७—आलस्य

विचार-सर्गी :—

(१) "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।"
(२) निद्रा का भंग, अर्जुन, नेपोलियन, लक्ष्मण, कुम्भकर्ण।
(३) आलस्य के कारण दिन का दुरुपयोग।
(४) दैनिक जीवन [illegible] और [illegible] की दशा
([illegible]) [illegible]
([illegible]) [illegible]

"अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।
दास मलूका कहि गये, सब के दाता राम॥"

ऐसी ही उक्तियाँ हैं, जो आलसियों के मुख से सुनी जाती हैं। अकर्मण्य जीवों को उन्हें सुनकर संतोष भी हो जाता है। परन्तु, इनमें तत्व कितना है इसकी ओर से वे आँखें मूँद लेते हैं। ऊपर के दोहे में यह ठीक है कि अजगर चाकरी नहीं करते, परन्तु पड़े-पड़े मिट्टी भी तो खाते रहते हैं, उन्हें हमारे-से दिव्य पदार्थ भी तो नसीब नहीं होते। इसीसे प्रकट है कि अजगर का जीवन धूल चाटने का जीवन है। पक्षियों का काम न करना हमारी समझ में नहीं आता। हाँ, मनुष्य महाशय ने यदि समस्त सृष्टि को अपनी ही बपौती समझ लिया हो, तो संभव है कि पक्षी कुछ नहीं करते और पराई सम्पत्ति पर हाथ फेंकते हैं। हमें तो पक्षियों का जीवन पुनीत जीवन दृष्टि आता है, हम उसमें पद-पद पर कर्मशीलता के लक्षण पाते हैं। उषःकाल में ही सदैव उठकर चहचहाना आलस्य को ढकेल देना नहीं तो क्या है? दाने-दाने को चुनकर खाते हुए फुदकते फिरना स्फूर्ति के झूले में झूलना नहीं तो क्या है? बस फल-मूलादि खाना, सो भी बावन तोले पाव रत्ती, क्या ऋषि-जीवन की सात्विकता की समता नहीं? अमेरिका का महान आविष्कर्ता एडीसन दिन रात में केवल दो घंटे सोया करता था, सो भी चार बार में आधा-आधा घंटा करके। वह कहा करता

स्वल्प भोजन करना है कि चिड़ियों की भाँति

रहता हूँ। उन्हीं चिड़ियों को अपने घेरे में घसीटना, हम तो कहेंगे, आलसियों की अलस-कल्पना का एक नमूना है।

निद्रा कर्मवीरों को विश्राम देती, और परिश्रम-जनित आलस्य को दूर हटाकर उन्हें चैतन्य बना देती है। वही आलसियों की शरण-स्थली बनकर उन्हें 'शनैश्चर' बनाती है। अर्जुन को गुडाकेश कहा जाता था। गुडाकेश उसे कहते हैं जिसने निद्रा को वशीभूत कर लिया हो। नेपोलियन सात सात दिन तक लगातार घोड़े की पीठ पर चढ़ा रहता था। जब भगवान् राम और देवी सीता शयन करते थे, तब धनुष बाण चढ़ाये और वीरासनपर बैठे हुए उद्ग्रीव लक्ष्मण जागते दृष्टि आते थे। तभी तो विजय-श्री उनके गले में जयमाल डालती थी। उधर कुम्भकर्ण, रावण आदि का वृत्त किससे छिपा है? "कुम्भकर्णी निद्रा" एक कहावत बन गई है। जागृति देवत्व की और आलस्य दैत्यत्व की पहिचान है।

आलस्य के आते ही रोग, दारिद्र्य, विनाश, मलिनता, पराधीनता आदि उसके सखा भी एक-एक करके आ जाते हैं। आलसी की इच्छाशक्ति निर्बल होने लगती और उसे अपनी शक्ति में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। छोटे से छोटा काम भी उसे पहाड़ प्रतीत होता है। वह भाग्य-वादी बन जाता और पुरुषार्थ को दूर ही से प्रणाम करता है। वह नहीं सोचता कि 'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' अर्थात् सिंह जैसे

प्रदान, अवसरों का सुयोग, और आदर्श का प्रभाव इत्यादि अनेक साधनों का हाथ रहता है।

यों तो, पशु पक्षियों को भी सिखाने से वे बहुत से काम करने लगते हैं। तोते राम रट लेते हैं; बन्दर, रीछ नाच-तमाशे दिखाते हैं, घोड़ों में नई नई चालें आ जाती हैं। परन्तु, ये सब मनोविनोद की सीमा तक ही रहते हैं। मनुष्य की बुद्धि पर शिक्षा का विचित्र ही प्रभाव पड़ता है। उसकी सोती हुई शक्ति में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। जैसे सूर्यकान्त-मणिपर प्रकाश की किरणें पड़ते ही वह प्रज्वलित हो उठता है, वैसे ही मानव-बुद्धि में ज्ञान के आलोक के स्पर्श से एक अपूर्व स्फुरणा उत्पन्न हो जाती है। उसकी दशा वैसी ही होती है, जैसी कि जल की तरङ्गों पर तैल की बूँद की। वह प्राप्त की हुई शिक्षा को न केवल ग्रहण ही करती, वरन उसे बढ़ा-बढ़ाकर विविध प्रकार से व्यक्त करने लगती है। इस क्रिया में वह कभी कभी गुरु-रूपी गुरू की चेली शक्कर बन जाती है। विद्यार्थियों की इस बुद्धि-विलक्षणता के कारण ही सत्यज्ञान की उन्नति होती रहती है।

शिक्षण की यह गुप्त शक्ति ईश्वरीय प्रसाद है। इसके अभाव में आदर्शों से बढ़कर अन्य कोई साधनकाम नहीं करता। गुरु जब शिक्षा देता है, तब शिष्य की बुद्धि की पहचान करता है और उसी के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था का ढंग गुरु के ही हाथ निर्भर रहता है। सम्भव है इसमें [illegible] और

आश्चर्य की सीमा न रही। आदर्श के प्रभाव का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि केवल दृढ़ इच्छा का बल पाकर आदर्श क्या कर दिखलाता है।

जिसके सामने उच्च आदर्श है, वही ऊँचा चढ़ सकता है। यही नहीं, वह अपनी पतितावस्था में भी आदर्श की ओर देखता हुआ अपने को सँभाले रह सकता है। आदर्श पुरुष किसी विशेष देश या जाति के नहीं होते; वे सबके हैं। उनके गुण समस्त संसार की सम्पत्ति हो जाते हैं; वे जगत के जातीय धन हैं। क्या वीरवर नेलसन का पराक्रम केवल इँगलैंड तक ही सीमित है? क्या महाराना प्रताप की धीरता और वीरता केवल हिन्दुओं की ही सम्पत्ति है? क्या नेपोलियन का अदम्य उत्साह फ्रांस का ही अधिकार है? क्या महात्मा बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि के सिद्धान्त एकदेशीय हैं? कदापि नहीं, इन आदर्शों से समस्त मानव-जाति का उपकार हो रहा है। इनकी ओर प्रत्येक [illegible] व्यक्ति की आँखें उठती हैं। इनकी आत्माएँ मृत्यु के गर्भ में सो नहीं गईं, वे भविष्य के लिए भी वैसा ही काम कर रही हैं जैसा कि उन्होंने अपने जीवनकाल में किया था [illegible]

होती है। यही गुण हमारी प्रवृत्ति का पथ-प्रदर्शक और हमारी उन्नति का हेतु होता है।

## १६—उत्साह

विचार-सूची :—

( १ ) शरीर की चेतनशक्ति; उसका प्रभाव।

( २ ) उत्साह ही जीवन, अनुत्साह ही मरण है।

( ३ ) उत्साह में विश्वास; आनन्द का आश्रय।

( ४ ) अभिमन्यु, नेपोलियन, लव, कुश।

( ५ ) पुरुष-सिंह; परिणाम।

कभी तो हमारा हृदय काम करने के लिए हिलोरें लेने लगता है और कभी हम निष्क्रियता की ओर झुक जाते हैं। यह क्यों? कारण यह है कि हमारे शरीर में जो चैतन्य शक्ति है, उसके जाग्रत रहने पर तो हृदय में उमङ्गें उठती हैं और जब वह किन्हीं अन्य चेष्टाओं में दब जाती है तो शिथिलता आने लगती है। यों तो जबतक प्राण शरीर में है हृदय की धड़कन बन्द नहीं हो सकती परन्तु इसमें उतनी तेज़ उमङ्गें [illegible] के कम्पन और [illegible] है। [illegible] हम [illegible] है

को देखकर लोगों को प्रसन्नता होती और उनमें स्फूर्ति आती है। उनकी चाल-ढाल, बात-चीत सब में आनन्द की झलक दिखाई देती है और उनके साथ रहने से अकर्मण्य भी कर्मशील बन जाते हैं। ये जीवन के उपवन की बुलबुल हैं, जिनके सुरीले स्वर में अनूठी चहल-पहल भरी है।

बड़े-बड़े महारथियों से सञ्चालित कौरव-सेना के सामने जब भीम और युधिष्ठिर तक मन्दोत्साह हो गये थे, तब सोलह वर्ष का अभिमन्यु चक्रव्यूह-भेदन के लिए आगे बढ़ा था। नेपोलियन सेना सहित आल्प्स पहाड़ को पार करके शत्रुओं पर वज्र की तरह जा टूटा था। बालक लव और कुश ने जगद्विजयी राम की सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। क्या आपने कभी विचार किया है कि यह किस शक्ति का प्रभाव था? यह अदम्य उत्साह की ही महिमा थी। यदि उत्साह न होता तो आज वायुयानों में उड़ते हुए आकाशचारी वीर अपने घरों में पड़े होते। इस उत्साह के पीछे कितने अपने प्राण तक नहीं खो बैठे! परन्तु, उससे औरों को अनुत्साह नहीं हुआ, वरन् उनका साहस बढ़ रहा है। उत्साही वीर सदैव प्राणों को हथेली पर रखकर काम किया करते हैं।

ऐसे पुरुष-सिंहों के विचार और संकल्प दृढ़ होते हैं। उत्साह का बल उनके रोम-रोम में समा जाता है। दृढ़ता रूपी कवच और उत्साह रूपी शस्त्र लेकर वे मानसिक दुर्बलताओं की सेना

तक इसके वश में होकर धूल खा जाते हैं। इसके फेर में पड़कर बड़े-बड़े धीरों का आसन हिल जाता, बुद्धिमानों की बुद्धि चकरा जाती और बलवानों की नसें ढीली पड़ जाती हैं। उनकी आँखों के आगे अन्धकार छा जाता और वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

दरिद्रता का दारुण दुःख ज्ञान को हर लेता और मनुष्य को निकम्मा कर देता है। दरिद्र व्यक्ति के चेहरे से, उसकी आँखों से, उसकी चाल से, उसकी बातों से और उसके व्यवहार से, ऐसी दीनता टपकती है कि उसका प्रभाव चारों ओर छा जाता है। वह जहाँ जाता है, करुणा उसके साथ-साथ चलती है। उसे देखकर दया आती और देखनेवालों पर उदासी छा जाती है। किसी जाति या देश की दरिद्रता देखकर तो आठ-आठ आँसू रोना पड़ता है। भारत और भारतवासियों की दशा, कहाँ-कहाँ हमारा सिर नीचा नहीं कराती ? हमारे पेट की तिल्ली इतनी बढ़ जाती है कि ठेस लगते ही फट जाती है। तपेदिक, मलेरिया, चेचक, हैजा, प्लेग आदि के तो हम आहार हैं। ये मुँह फाड़-फाड़कर हमारे ऊपर दौड़ पड़ते हैं। विदेश में जाइए, कुलियों के वेश में हमारी दरिद्रता मारी-मारी फिर रही है। वहाँ हम कोई राष्ट्र ही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग हैं। जब हम अपने घर में ही दास हैं, तो बाहर की बात ही क्या ? वहाँ हमारे लिए ऐसे नियम बन रहे हैं कि हमारा प्रवेश ही वहाँ कठिन हो चला है।

समाज के भावी सेवकों की दृष्टि आरम्भ ही से सचपर रहे। वहाँ समता का भाव रहे और हम अपने नागरिक जीवन का महत्व जान जायँ।

जो लोग लोक-सेवा की दृष्टि से दारिद्र्य-व्रत धारण करते हैं, वे दरिद्र नहीं। वे तो सेवा के द्वारा सेव्य बन जाते हैं। महात्मा गाँधी ऐसे ही दरिद्र-नारायण हैं। वे दरिद्र बनकर दरिद्रों को देख रहे हैं। यदि वैसा संकल्प, वैसे विचार, वैसा परिश्रम, वैसी पवित्रता और वैसी धुन, हम में भी हों तो न हम दरिद्र रहें, न हमारा देश।

## २१–श्रद्धा

विचार-सूची :–

( १ ) श्रद्धा पर्वतों को भी चलायमान बना देती है।
( २ ) आचार्य वसु, बुद्ध, शङ्कर, नानक।
( ३ ) सफलता की पहली सीढ़ी; व्यापक लक्ष्य; अटल विश्वास।
( ४ ) आत्म-निर्भरता; परमात्मा का आश्रय।
( ५ ) मधुर फल; दयानन्द, ईसा, गुरु गोविन्दसिंह।
( ६ ) "यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" जैमिनी का उपदेश।

"Faith can move mountains."

अर्थात् श्रद्धा पर्वतों को भी चलायमान बना देती है।

ऊपर के वाक्य में एक गम्भीर तत्व निहित है। जो पर्वत बड़े-बड़े तूफानों और आँधियों के वेग से विचलित नहीं होते, जो पृथ्वी की अन्तराग्नि के विस्फोट को भी झेल जाते हैं, वे श्रद्धा के बल से किस प्रकार चल-विचल हो जायँगे, इस बात को मानने में साधारण बुद्धि सिर हिलाती है। परन्तु, यदि भाषा के अलङ्कार पर ध्यान दिया जाय, तो वास्तव में बाधाओं के पर्वत श्रद्धा के बल से सामने से हट ही नहीं जाते, चूर चूर हो जाते हैं। आश्चर्य नहीं, यदि श्रद्धा की अटलता पर्वतों की अचलता को भी दूर कर दे। श्रद्धा के बल का अनुमान भी सहज नहीं। इसने ऐसे ऐसे काम कर दिखाये हैं, जिनकी कल्पना भी कभी किसीने न की थी।

श्रद्धा के ही सहारे विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने वृक्षों में जीव की कल्पना को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया। उनके द्वारा आविष्कृत यंत्रों का चमत्कार देखकर योरप, अमेरिका आदि पाश्चात्य देश, अंगुली पर उँगली रख गये। बुद्ध, शङ्कर, नानक ने संसार की विचार-धारा को पलट दिया। कोलम्बस, न्यूटन, एडीसन आदि ने क्या-क्या कर दिखाया, सो भी सभ्य संसार से छिपा नहीं है। भगवान् कृष्ण ने गीता में भी यही कहा है—
[illegible] अर्थात् जितेन्द्रिय और [illegible] श्रद्धावान [illegible] ज्ञान को प्राप्त करता है। फिर, वह ज्ञान [illegible] वैज्ञानिक

विरोध का भय हमारे पास न फटकने पावे। हमारा भ्रु वनिश्चय रहे कि हमारे महान् उद्देश की सिद्धि में परमात्मा हमारा सहायक है। पवित्र आत्माओं, शुभ कार्यों और महान् उद्देशों की रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। बड़े-बड़े कर्तव्यशीलों के सामने ऐसी बाधाएं आ जाती हैं कि उनके पाँव डिग जाते हैं; निराशा से उनका कलेजा काँपने लग जाता है; विपत्ति के बादल उन्हें अन्धकार में डुबा देते हैं। ऐसे समय पर कोई मानवी सहायता काम नहीं देती। उस समय केवल परमात्मा का हाथ ही उनके सिर पर रहता और उन्हें घुटने टेक देने से बचा लेता है। वे मनुष्यों की सहायता की उपेक्षा करते हुए, उसे प्रतिपल अपने समीप पाते हैं। उनकी भावना ही यह होती है कि हम तो निमित्त मात्र हैं, यदि जय है तो परमात्मा की और पराजय है तो उसीकी। उसका दयारूपी जल, श्रद्धा की लहलहाती हुई लतिका को, बाधाओं के तप्त झोंकों से सूखने नहीं देता।

इन भावों के साथ श्रद्धा वह अभीष्ट फल देती है, जिसकी शीतलता हमारे परिश्रम की थकावट को पलमात्र में हर लेती है। उस समय हम उस अपूर्व आनन्द को प्राप्त करते हैं, जो कर्तव्य-पालन के पश्चात् मिला करता है। हमारी श्रद्धा हमें वहाँ ले जाकर बिठा देती है, जहाँ से हम अपने बोये हुए बीजों को फलता फूलता देखकर फूले नहीं समाते। उस समय जो हमारे मार्ग में रोड़े अटकाते थे वे ही मनुष्य नम्रता से हमारी

"अपने हृदयों को श्रद्धा से परिपूर्ण करो। केवल मुँह से श्रद्धा का नाम न लो, वरन् अपने रोम रोम में श्रद्धा भरो। अपने मन और वाणी को एक बनाओ, अपने आचरणों को पवित्र करो। अपने लक्ष्य की सिद्धि में तन्मय होकर लग जाओ। अपने जीवन को यहाँ तक धर्ममय बनाओ कि लोग तुमको धर्म की, निस्पृहता की, लोक-सेवा की, अनन्यता की, सात्विक श्रद्धा की, चलती-फिरती मूर्ति समझने लगें।"

## २२–मनुष्यता

पूर्व विचार :—

( १ ) मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी है।

( २ ) मनुष्यता का पद।

( ३ ) स्वार्थ और परार्थ।

( ४ ) मनुष्यता के गुण और मनुष्य की शक्ति।

( ५ ) पारस्परिक घृणा का जन्म।

( ६ ) मनुष्यता का [illegible]

इस [illegible] सर्वोत्तम [illegible]

दमन करना आदि ऐसे सद्गुण हैं, जो मनुष्य की विभूति हैं। यदि अभिमान के वश में होकर अथवा अन्य किसी कारण से कोई व्यक्ति समाज के लिए दुःख या क्लेश का हेतु हो, तो वह मनुष्य पद से गिर जाता है। अपने बल का अनुचित प्रयोग करने से वह पशुता के पाश में पड़ जाता है। मद में आकर वह मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता और अपने आपको सर्वशक्ति-सम्पन्न समझने लगता है। उस समय उसे अपने जीवन की क्षणभङ्गुरता और परिमित शक्ति का ज्ञान नहीं रहता।

मनुष्यता के नाते को भूलकर ही एक जाति दूसरी जाति को बन्धन में डालती और एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र पर अधिकार जमाने की ताक में रहता है। इसी विचार के कारण उच्च और नीच की भावना बढ़ती जाती और पारस्परिक घृणा का जन्म होता है। बात यहाँ तक बढ़ जाती है कि सारे मनुष्य काले या गोरों को तुच्छ समझते हैं, या द्विज शूद्रों का छूना तक पाप मानते हैं। मनुष्य जाति की एकता इस समय ध्यान में भी नहीं आती और हम अपने मनुष्य के साथ [illegible] का सा व्यवहार करने [illegible] यह [illegible] [illegible] है [illegible] आन्दोलन है [illegible]

मनुष्यता का निवास मनुष्य के सुन्दर वेश वा सभ्य व्यवहार में नहीं, किन्तु उसके उदार हृदय और शुद्ध आचरण में है। यदि हम मनुष्य हैं, तो हमारा धर्म है कि हम दूसरों को भी मनुष्य बनावें, यदि हम बड़े हैं, तो दूसरों को ऊँचा उठावें। सारांश यह है कि यदि हमें मनुष्यता की खोज है, तो हम मनुष्यों से मिलें उनके हृदयों को टटोलें और उनकी सेवा को अपना अहोभाग्य समझें।

## २३—चरित्र-बल

विचार-सूची :—

( १ ) गौतम ; प्रह्लाद ; पाण्डव।

( २ ) चरित्र मनुष्य की निज की सम्पत्ति है।

( ३ ) चरित्र की छाया।

( ४ ) चरित्र-रक्षा: भीष्म; वीर वैरागी; [illegible]।

( ५ ) चरित्र-शीलता।

गौतम ने राज-पाट छोड़ दिया। आधी रात के समय पुत्र-कलत्र का मोह तोड़, वे घर से चल दिये [illegible] से बहु- [illegible]। वैदिक धर्म की शिक्षा के उपरांत उन्होंने अपना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

के वज्र गिराये गये। उस बालक को पहाड़ों की चोटियों से पटका गया; कुम्हार के आँवें में फूँका गया; होलिका की गोद में जलाया गया, किन्तु उसका बाल भी बाँका न हुआ। वैरागी, बुद्ध और बालक प्रह्लाद के पास कौन-सा बल था, जिससे वे जगद्वन्द्य हुए; अपनी अकिञ्चनता में भी सम्राटों से बढ़ गये? किसके बल से हमारे ऋषि-मुनियों ने वन के कन्द, मूल, फल खाकर शास्त्रों की रचना की थी? किसके बल से वन-वन भटकते हुए पाण्डव, कौरवों की सङ्गठित-सेना से लोहा लेने में समर्थ हुए थे? यह सब चरित्र-बल की ही महिमा थी।

चरित्र मनुष्य की निज की सम्पत्ति है। उसके सामने ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ तक तुच्छ हैं। वह ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से भी परे है। संसार के सब सद्गुण एक ओर, और चरित्र दूसरी ओर रखकर तौलिए, चरित्र का ही पलड़ा भारी रहेगा। चरित्र ही गुण की भूमि है। जिस प्रकार पानी का कोई रंग नहीं होता, वह जैसे रंग में मिल जाता, वैसा ही उसका भी रंग हो जाता है, इसी प्रकार गुण भी जैसे चरित्र में मिलता है वैसा ही रूप धारण करता है। यदि हमारा धन चला गया, तो कुछ नहीं गया। यदि हमारा स्वास्थ्य चला गया तो कुछ चला [illegible] यदि हमारा [illegible] सब कुछ चला [illegible] में बड़ा [illegible]

विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े हैं; धन, जन, सर्वस्व छीना गया है; नंगी तलवार सिर पर नाच रही है; हाथियों के पाँवों तले कुचला गया है; तो भी चरित्रवान् अपने चरित्र पर अटल रहे हैं। चरित्र को दबानेवाली शक्ति आज तक न उत्पन्न हुई और न हो, वह अजेय है। चरित्र भगवान् का प्यारा और संकट का सहारा है। भीष्म के पास एक चरित्र है, वे उसके बल पर भगवान् कृष्ण को चुनौती देते हैं। उनके सामने भगवान् अपना प्रन तोड़कर रथ का चक्र धारण करते और भीष्म हँस देते हैं। वीर-वैरागी सिक्ख के पुत्र का कलेजा उसकी आँखों के सामने निकाला जाता, और उसकी छाती में मारा जाता है। पर उसकी आँखें चरित्र-बल से ध्रुव हैं, वह अपने धर्म पर अटल है। कर्ण रण-क्षेत्र में घायल पड़ा है, उसके कवच और कुण्डल अजेय हैं, उन्हींमें वह अमर है। विप्र-वेष में कृष्ण उसके पास जाते हैं, और कवच-कुण्डल की भिक्षा माँगते हैं। कर्ण छद्मवेशधारी ब्राह्मण को पहचान लेता है, परन्तु कवच-कुण्डल उतारकर चरित्र की रक्षा करता है। धन्य है इन चरित्रशीलों की जननी को, धन्य है इनकी चरित्रों को !

मनुष्य जन्म पाकर यदि हम कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं, तो सबसे पहले हमें चरित्र-धन प्राप्त करना चाहिए। सांसारिक वैभव और सम्पत्ति पीछे की बातें हैं। अपनी नीति-कुशलता और चालबाज़ी के बल से मोटे और अपढ़ लोगों से धनार्जन करने

के प्रसाद में अरोचकता को अर्द्धचन्द्र देती है। कभी पीड़ितों के चीत्कार से करुणा के आँसुओं की झड़ी लगाती है, तो कभी भक्ति-रस की अमृतधारा में बहा देती है। कभी ओज की उमङ्गें उठाती, कभी अपने दुष्कृत्यों पर लजाती है। कभी शान्त-लोक में विचरण कराती और कभी माया के प्रपञ्च में डुबाती है। उसकी नोंक से जिस भूमि को कुरेदा जाय, उसीमें भिन्न-भिन्न भावों की प्रसूति होने लगती है।

तलवार की वीर-गाथाओं का बीज-वपन भी कलम ही करती है। जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं, वे अपनी आँखों से बहुत कुछ काम लेते हैं, पर तो भी कलम के प्रभाव से वे नहीं बच सकते। रण-कड़खों की तान सुनते ही उनकी भी रगें फड़क उठती हैं और उनका हाथ तलवार ही पर पड़ता है। वीरभाव का उद्रेक कलम के ही बल से किया जाता है। तलवार का कार्य समाप्त होने पर बीभत्स-काण्ड के दृश्य से जो विराग उत्पन्न होता है, वह भी कलम ही की कृपा से दूर होता है। कुरुक्षेत्र के समराङ्गण में एकमात्र धनुर्धर अर्जुन का गाण्डीव जब हाथ से छूट पड़ा था, तब "क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप" कहने तलवार नहीं आई थी, वहाँ कृष्ण के रूप में कलम ही बोल रही थी।

तलवार से विजय मिलती और अखण्ड-कीर्ति स्थापित होती है। इस विचार से भी कलम की करतूत कम नहीं। एक ही

## २५—पढ़ने के आनन्द

बिना किसी उद्देश के पढ़ना, पढ़ना नहीं; पढ़ना वही है, जिससे विवेक और विचार बढ़े। इस प्रकार के पढ़ने में जो आनन्द है, वह वाणी के वर्णन का विषय नहीं; वह अनुभव के हृदय की ज्योति है। त्रैलोक्य का सौन्दर्य और तीनों काल की सम्पदा उसके अन्तर्गत ही रहती है। स्वाध्याय के सुख-लोक में, सुर-लोक एक पर्ण-कुटी है। सूर्य, चन्द्र, तारागण उसके प्रकाश-मन्दिर की फुल-झड़ियाँ हैं। उसमें सच्चिदानन्द के सत् और चित् के संयोग में आनन्द का आनन्द है; उसकी विश्व-वाटिका में मानस-हंस का सरोवर है।

एक कोने में बैठकर मनमाने सुख का साधन पढ़ने में मिलता है। जी चाहे तो वाल्मीकि के तपोवन में विचरण कीजिए; जी चाहे तो हल्दीघाटी में प्रताप के प्रताप का उत्कर्ष देखिए। चाहे सूर के पदों पर भ्रमर बनकर मँडराते रहिए; चाहे तुलसी के मानस-सर में डुबकी लगाइए। चाहे व्यास के अति-विक्रम का ध्यान कीजिए। चाहे कालिदास के काव्य-लोक का आनन्द लूटिए। चाहे वेद और उपनिषदों का मनन कीजिए; चाहे गीता के गौरव में गोते लगाइए। चाहे शेक्सपियर की मानव-प्रकृति का विवेचन कीजिए, चाहे मिल्टन की ज्ञान-गरिमा को

के मनोरञ्जन के साथ माया के आवरण में मानसिक शान्ति की झाँकी होने लगती है। उस मौन-लोक के प्राणी बड़े साधु, सुहृद, उदार और मिलनसार हैं। उनके साथ रहकर, संसार के मायावी जीवों से मिलना तुच्छ प्रतीत होता है। उनकी संगति में आनन्द और अनुपमनीय मोद-विनोद है।

## २६—१९२६ की चुनाव-लीला

पूर्व विचार :—

( १ ) सदियों की दासता, वोट का अधिकार।
( २ ) वोट क्या है ?
( ३ ) वोट के अधिकारी।
( ४ ) कौंसिलों में देश-सेवा।
( ५ ) राजनैतिक दल।
( ६ ) चुनाव-लीला के कुछ अभिनय।
( ७ ) कार्यकर्ताओं की करतूतें।
( ८ ) मत-भेद।

सदियों से दासता के बन्धन में पड़ी हुई भारतीय जनता अपनी पराधीनता का अनुभव करने लगी है। संसार की स्वतंत्र जातियों का उदाहरण उसके भी हृदय में स्वतन्त्रता की भावना जगा रहा है। इस इच्छा [illegible] भावना का [illegible] हमारी [illegible] [illegible]

तन्त्रवाद की ओर ले जाये जा रहे हैं। हमारे चुने हुए प्रति-निधि कौंसिलों में जावें और वहां हमारी भलाई पर विचार करते हैं। चुनाव के इस अधिकार को वोट कहते हैं।

वोट क्या है? वोट ही वह पवित्र अधिकार है, जिसका 'मन्त्र' फूंकने से स्वराज्य रूपी 'मन' बनेगा। हमारा यह अधिकार जन्म सिद्ध है, ईश्वर-दत्त है। हमारे देश के भाग्य इस पर अवलम्बित है, और हमारी योग्यता का सार यही है। गवर्नमेन्ट क्या है? कोई भूत नहीं, प्रेत नहीं, देव नहीं, राक्षस नहीं, और वह कोई हौआ कदापि नहीं। हमारी राय के अनुसार जो नियम या क़ानून बनें, उन्हीं को हम सब मानें यही गवर्नमेन्ट है और हमारी राय ही वोट है। इसलिए वोट ही गवर्नमेन्ट का मौं-बाप है। जिस प्रकार बेटे का सपूत या कपूत बनना मां-बाप के हाथ में है, उसी प्रकार गवर्नमेन्ट का अच्छा या बुरा बनाना वोट की करामात है। वोट गवर्नमेन्ट रूपी बन्दूक का छोटा-सा घोड़ा है। परन्तु, यह ऐसा हथियार है कि ठीक बैठे तो दिल्ली का धुआँधार उड़ा दे, और चूक जाय तो अपना ही सिर धड़ से हटा दे। इसलिए, बहुत समझ-बूझकर और [illegible]

[illegible]

बड़ी बलवती हैं, पुलिस बड़ी कठोर है, हाकिम बड़े होशियार हैं। उन्हें शासन के संहारक स्वरूप का अनुभव-जन्य बोध है, उसके सुधारक स्वरूप का बहुत कम वा नहीं के तुल्य। अन्न और नमक उनके सर्वस्व हैं, परमेश्वर हैं। उन्हें अन्य झंझटों से घृणा है। सरकार कोई हो उन्हें चिन्ता नहीं, वे अलमस्त अपनी गुदड़ी में मस्त हैं। स्वाधीनता वा दासता का वे अनुभव ही नहीं करते। अब रहे वे, जो पराधीनता के कष्टों से अकुला उठे हैं, जो देश को स्वतंत्र देखने के लिए लालायित हैं, जो देश पर सर्वस्व निछावर कर रहे हैं। वे ही कौंसिलों में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ते और चुनाव-लीला का नाटक खेलते हैं।

सरकार के साथ काम करके यदि देश की कुछ सेवा हो सकती है, तो उसका सबसे अच्छा अवसर कौंसिलों में ही मिलता है। प्रत्येक देश का उद्धार वहाँ के पुरुष-रत्नों के द्वारा ही हुआ है। उन्हींके मस्तिष्क की उपज पर देश का भाग्य-निर्माण अवलम्बित है। इसलिए योग्य से योग्य और सच्चे देश-सेवियों के लिए ही वोट देना और उन्हें चुनना चाहिए। परन्तु यश की लालसा बड़ी प्रबल होती है। स्वार्थ का त्याग बड़ा कठिन है। प्रभुत्व का प्रेम बुद्धि पर परदा डाल देता है। ऐसे ही कारणों से हमारी मनोवृत्ति में दासता ने ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया है कि हम एक स्वर से कुछ कह ही नहीं सकते। अपनी अपनी

कच्छप बन गई। भोली श्रद्धा भटक-भटककर बावली हो गई। पतन अपने पंख फैला-फैलाकर उछलता फिरा।

पैसेवालों ने अपने पैसे को पानी की भाँति बहाकर प्रभुता के पद चूमे। जाति-पाँति के चौधरियों ने बिरादरी के नाम पर नाम लूटा। हिन्दू-हितैषियों ने हिन्दुत्व की आड़ में कीर्ति कमाई। मुसलमानों ने मुसलिम हितों की रक्षा का राग अलापा। चन्दे की कमी से लड़खड़ाती हुई संस्थाओं ने दान का नाम निकाला। प्यासे ग़रीबों ने कुएँ खुदवाये। पदधारियों ने अपनी पदवी की लज्जा रखी। सम्बन्धियों ने सम्बन्ध निभाया। किसानों ने ज़मींदारों के प्रति अपनी भक्ति दिखाई। ज़मींदारों ने अपनी शान का नमूना दिखा दिया। जिनकी जीभ में बल था, उन्होंने जीविका तक कमाई। वे कभी इस उम्मेदवार के और कभी उस उम्मेदवार के गीत गाकर अपनी जेब गरम करते रहे। यह सब हुआ उस पवित्र नाम पर, उस पुनीत वेदी पर, जिसका नाम राष्ट्रीयता है। देवी स्वतंत्रता की पूजा इस विधि की गई। भोले "वोटर" जब "वोट" देने जाते थे, तब तो जिस छल से, जिस प्रपंच से, जिस नीति से काम लिया जाता था, उसे देखकर हृदय बैठा जाता था। उम्मेदवारों के नाम तक का उच्चारण बेचारे बहुत से न कर सकते थे। वोट दे चुकने पर उनका बोझ उतर जाता था, उन्हें पेजेंट रूपी मच्छरों से मुक्ति मिल जाती थी। विशाल भारत और उसकी इस अन्धी सन्तान

ं कल्पना करके शरीर में रोमाञ्च हो उठता है। राम-राज्य की
द प्रजा आज स्वराज्य के लिए किस अवस्था को पहुँच गई है!

मत-भेद बुरी बात नहीं। वह उन्नति का लक्षण है। परन्तु
उनमें राग-द्वेष, वैर-विरोध, छल-छिद्र न होना चाहिए। कौंसि-
लों में जाना देश की सेवा है, सम्मान उसका फल है न कि वह
उसका ध्येय। मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई मातृ-भूमि के साथ खेल करना
उचित नहीं। ऐसी दशा में उसके योग्यतम पुत्र को ही उसकी
सेवा-शुश्रूषा करने दो। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अछूत, धनी,
निर्धन सभी उसके पुत्र हैं। इन संकीर्ण भावों को छोड़कर उसके
सेवक चुनो। वोट की पवित्रता की रक्षा करो। चुनाव के
स्वार्थपूर्ण नाटक का अन्त कर दो! ऐसी लीलाएँ खेलो, जिनका
प्रभाव राष्ट्र की एकता, उसके गौरव तथा प्रताप के उत्कर्ष का
कारण हो। तभी स्वाधीन भारत के दर्शन होंगे और तुम अपना
राज आप कर सकोगे।

## २७—काशी की शोभा

पतित-पावनी पुण्य-तोया श्रीगंगाजी के तट पर विश्वनाथपुरी
काशी की शोभा अनुपम ही है। अविनाशी शङ्कर के त्रिशूल
पर शोभित यह वही काशी है, जो चिर-काल से हिन्दू-धर्म, आर्य-
संस्कार और संस्कृत भाषा की संरक्षिका रही है। भारत के कोने-
कोने से लाखों यात्री प्रतिदिन यहाँ आते और गंगा-जल में स्नान

कर चारों फल पाते हैं। यहाँ के विशाल प्रासाद उन वयोवृद्ध सम्बन्धियों से भरे रहते हैं, जो काशी-धाम में प्राण-परित्याग करने के लिए लालायित रहते हैं। अनेक धर्माचार्यों, धुरन्धर विद्वानों, प्रबुद्ध प्रचारकों, कवि-कोविदों तथा साधु-संन्यासियों से इसकी गोद समय समय पर सुशोभित होती रही है। यहीं डोम के घर में सत्य की हरिश्चन्द्री छटा छिटकी थी। यहीं से तुलसी ने अपनी कोमल-कान्त-पदावली और भारतेन्दु ने ललित नाटकावली में राष्ट्र-भाषा हिन्दी की नूतन धारा बहाई थी। यहीं महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने विश्व-विद्यालय की स्थापना कर हिन्दू-जाति का मस्तक ऊँचा किया है।

भगवती भागीरथी मुड़कर मानों यहाँ विश्वनाथ के दर्शनों को बढ़ी चली आती हैं। इसी मोड़ पर कोई सौ फीट ऊँचा पहाड़ी तट है, जिस पर इस पुण्य-दर्शन पुरी के गगन-चुम्बी प्रासाद, स्वर्गोपम-देव-मन्दिर और मनोरम घाट मील भर तक भुवनमोहिनी छटा प्रदर्शित करते हैं। नौकारूढ़ होकर प्रातःकाल सामने से इसकी छटा का अवलोकन कीजिए। अपूर्व दृश्य दृष्टि आता है। सुरसरी की सलिल-धारा से स्पर्श हुई सोपान-मार्ग मन्दों स्वर्ग की नसेनी-सी बन जाती है। जल में निकले हुए चबूतरों पर आसन बाँधे ध्यानावस्थित भक्तों का दृश्य सहज पवित्र भावों की प्रेरणा करता है। "हरि-हरि" कहते हुए वहाँ स्त्रियों का सुन्दर स्नान बड़ा मनोहारी होता है। दश-

कर चारों फल पाते हैं। यहाँ के विशाल प्रासाद उन वयोवृद्ध सम्बन्धियों से भरे रहते हैं, जो काशी-धाम में प्राण-परित्याग करने के लिए लालायित रहते हैं। अनेक धर्माचार्यों, धुरन्धर विद्वानों, प्रबुद्ध प्रचारकों, कवि-कोविदों तथा साधु-संन्यासियों से इसकी गोद समय समय पर सुशोभित होती रही है। यहीं डोम के घर में सत्य की हरिश्चन्द्री छटा छिटकी थी। यहींसे तुलसी ने अपनी कोमल-कान्त-पदावली और भारतेन्दु ने ललित नाटकावली में ।राष्ट्र-भाषा हिन्दी की नूतन धारा बहाई थी। यहीं महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने विश्व-विद्यालय की स्थापना कर हिन्दू-जाति का मस्तक ऊँचा किया है।

भगवती भागीरथी मुड़कर मानों यहाँ विश्वनाथ के दर्शनों को बढ़ी चली आती हैं। उसी मोड़ पर कोई सौ फ़ीट ऊँचा पहाड़ी तट है, जिस पर इस पुण्य-दर्शन पुरी के गगन-चुम्बी प्रासाद, स्वर्गोपम-देव-मन्दिर और मनोरम घाट तीन मील तक भुवनमोहिनी छटा उपस्थित करते हैं। नौकारूढ़ होकर प्रातःकाल सामने से इसकी छटा का अवलोकन कीजिए। अपूर्व दृश्य दृष्टि आता है। सुरसरी की सलिल-धारा से उठती हुई सोपान-माला मानों स्वर्ग की नसैनी-सी बन जाती है। जल में निकले हुए चबूतरों पर आसन बाँधे ध्यानावस्थित भक्तों का मुखमण्डल पवित्र भावों की प्रेरणा करता है। "गंगे-गंगे" कहते हुए नंगे यात्रियों का सुन्दर स्नान बड़ा मनोहारी होता है। सूर्य-

निर्मित छत्रों के मण्डप में विराजमान त्रिपुण्डधारी पुरोहित या ध्यान-निरत साधु जहाँ-तहाँ निराली ही छवि देते हैं। स्थल-स्थल पर छोटे छोटे मठों में विराजमान अन्त की प्रतीक्षा में गंगा की ओर बद्ध-दृष्टि, उत्कण्ठ वयोवृद्ध श्रद्धा की प्रतिमा से प्रतीत होते हैं। स्वर्ण-शुचि कलश कन्धों पर धारण किये सीढ़ियों पर चढ़ती उतरती रमणियाँ पूजा की चलती फिरती मूर्ति-सी लगती हैं। मित्र-मण्डली के साथ विनोद-विहारी युवक, भ्रमण की भावना से आये हुए परिव्राजक, दूध-बताशे, फल-फूल, कण्ठी-माला और खिलौने बेचते हुए फेरीदार इधर-उधर विहार करते हैं। नादियों का निर्द्वन्द्व विचरण और कम-ण्डलु-कौपीन-धारी साधुओं का विराट परिवार यहाँ देखने को मिलता है। नीले-नीले गगन-मण्डल के नीचे चन्द्रिका-धवल भवन, चित्र-विचित्र मन्दिर, उठते हुए मण्डप, तथा कलश कंगूरे और उनपर फहराती हुई तोरण-पताकाएँ आकाश से बातें करती हैं। इन सबका चतुर्दिक् रूप तट की शोभा को ऐसी स्वर्गीय बना देता है कि वह भगवान् शङ्कर की सामञ्जस्य शोभा धारण कर लेती है और इसका जल में पड़ता हुआ प्रतिबिम्ब तो ऐसा जान पड़ता है, मानो गंगा के शुभ्र वक्षःस्थल पर काशी ही स्वयं अव-तीर्ण हो रही हो।

काशी शब्द से केवल का बोध नहीं है। अब यहाँ हिन्दू-विश्वविद्यालय का कलाभवन-हिन्दू-यूनिवर्सिटी के रूप में सुशोभित

ने अपना भवन निर्माण कर उसे अपना चिरनिवास घोषित कर दिया है। प्रधान नगरी से कुछ ऊपर गंगा-तट पर स्थित तीन मील लम्बा और उतना ही चौड़ा यह विशाल विद्यापीठ भारत में ही नहीं, विश्व भर में अपनी समता नहीं रखता। इस पुण्य-स्थली में प्रवेश करते ही हिन्दुत्व का प्रभाव और धर्म की निर्मल भावना हृदय पर बलात् अपना अधिकार जमा लेती है। प्रवेश मार्ग पर लगी हुई दोनों ओर की पुलकित पादपावली और दूर ही से दृष्टि आती हुई सरस्वती के मन्दिरों की चोटियाँ, मानों हिन्दू-गौरव की उठती हुई पताकाएँ प्रतीत होती हैं। वहाँ के वायु-मण्डल में ही कुछ ऐसी सौरभ है, जो शरीर को छूते ही विशद विचार उत्पन्न कर देती है। छात्रालयों, विद्यालयों तथा आचार्यों के आश्रमों के पटमण्डप, कलश, कंगूरे भी मौन-भाषा में कुछ ऐसा सङ्केत करते हैं कि आर्य-जीवन की सरलता और उसके विचारोत्कर्ष का दृश्य एक साथ ही सामने आ जाता है। छात्रों या आचार्यों की कोई विशेष वेश-भूषा नहीं, तो भी उनकी मञ्जुल मुद्राओं पर हिन्दू-जीवन की छाप-सी लगी जान पड़ती है।

आर्य-जाति के अतीत गौरव के चिह्न और पूर्वीयता की प्रतिमूर्ति यहाँ के छात्रालयों तथा विद्यालयों में प्राचीनता और आधुनिकता का गंगा-जमुनी मधुर सम्मिलन पद-पद पर प्रतिलक्षित होता है। "विद्या धर्मेण शोभते।" विद्या धर्म से ही शोभा पाती है का भाव यहाँ साकार विद्यमान है। साहित्य,

हो कि 'निर्धन के धन गिरिधारी' फिर भी वही अकड़। धनाभि तो, तुमने अपने हिमायती इन्द्र को लेकर भी ब्रज के ग्वाल-बालों का क्या कर लिया था ? उस समय तुम पानी पानी तो हो गये पर डूबकर मरे नहीं। ध्रुव की तपस्या में ही तुमने विघ्न डालने में क्या कसर रखी थी ? पर, वह ध्रुव ही रहा और तुम ध्रुव से ध्रुव तक दौड़ लगाकर भी अध्रुव ही रहे।

तुम्हें पता है तुम कहाँ जन्मे हो, तुम्हारा स्थान कहाँ है ? इसी धरती पर। इसलिए धरती पर पाँव रखकर चलो। सूर्य के तेज से ऊँचे उठ गये तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया ? तुम तो सदा से नीचे की ओर जानेवाले रहे हो। ऊँचे चढ़कर कुछ ऊँची बातें भी सीख लो। हवाई घोड़े पर क्या चढ़े, अन्धे बनकर उड़ते हो। तभी तो पहाड़ों से टकरा खाकर तुम्हारे दाँत टूटते हैं। हवा के चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि धनचक्कर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो। तुम महादानी हो, सब को देते हो; किसी को विमुख नहीं करते। परन्तु, पात्र-परीक्षा में अधूरे हो। चातक ने युग बिना दिये, पर तुम्हारी अनन्य भक्ति से कभी मुँह न मोड़ा। परन्तु आज तक तुमने उसका दुख-मोचन किया ? क्या अब भी इस बात पर तुम भोले गिरा कर अपनी कठोरता का परिचय नहीं देते ? ऐसा क्यों ? अन्त की तो भगवान भी सुध लेते हैं परीक्षा की भी सीमा होती है।

हो कि 'निर्धन के धन गिरिधारी' फिर भी वही अकड़। बताओ तो, तुमने अपने हिमायती इन्द्र को लेकर भी व्रज के ग्वाल-बालों का क्या कर लिया था? उस समय तुम पानी पानी तो हो गये, पर डूबकर मरे नहीं। ध्रुव की तपस्या में ही तुमने विघ्न डालने में क्या कसर रखी थी? पर, वह ध्रुव ही रहा और तुम ध्रुव से ध्रुव तक दौड़ लगाकर भी अध्रुव हो रहे।

तुम्हें पता है तुम कहाँ जन्मे हो, तुम्हारा स्थान कहाँ है? इसी धरती पर। इसलिए धरती पर पाँव रखकर चलो। सूर्य के तेज से ऊँचे उठ गये तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया? तुम तो सदा से नीचे की ओर जानेवाले रहे हो। ऊँचे चढ़कर कुछ ऊँची बातें भी सीख लो। हवाई घोड़े पर क्या चढ़े, अन्धे बनकर उड़ते हो। तभी तो पहाड़ों से टकर खाकर तुम्हारे दाँत टूटते हैं। हवा के चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि चनचकर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो। तुम महादानी हो, सब को देते हो; किसीको विमुख नहीं करते। परन्तु, पात्र-परीक्षा में अधूरे हो। चातक ने युग बिता दिये, पर तुम्हारी अनन्य भक्ति से कभी मुँह न मोड़ा। परन्तु आज तक तुमने उसका दुख-मोचन किया? क्या अब भी उस दीन पर तुम ओले गिराकर अपनी कठोरता का परिचय नहीं देते? ऐसा क्यों? भक्तों की तो भगवान भी सुध लेते हैं परीक्षा की भी सीमा होती है।

तुम केले पर गिरो, तो कपूर बनकर संसार को महका दो। सीप के मुख में गिरो, तो जगत् को मोतियों से जगमगा दो, खेतों पर गिरो, तो पृथ्वी का अञ्चल धानी परिधान से लहलहा दो और भारतीय किसान प्रजा तुम्हारी छत्रच्छाया में रामराज्य का अनुभव करने लगे। पर कब? जब तुम्हारा संकल्प ध्रुव हो, तुम्हें शुभाशुभ का विवेक हो। इसीसे तो हम कहते हैं कि तुम बादले हो, बावले हो।

## २१—माँ का हृदय

माँ, तुम्हारा हृदय कितना कोमल है! फूल-सा? नहीं माँ, वह तो काँटों में पला है, उसमें तो कीड़े पलते हैं। मोम-सा? नहीं माँ, वह तो मक्खियों का मल है। मक्खन-सा? नहीं माँ, बिलोने-बिलोने उसका तो मन ही मसल दिया गया है; वह सोंठ से कड़ा और धूप से ढीला हो जाता है। फेन-सा? नहीं माँ, वह तो छूते ही बैठ जाता है। रेशम-सा? नहीं माँ, वह तो कीड़ों का कफन है। [illegible]-सा? नहीं माँ, वे तो हवा लगते ही बह जाते हैं। [illegible] की रुई-सा? नहीं माँ, वे तो हाथ ही बिना [illegible] हैं। माँ, तुम्हीं बता दो कैसा? [illegible] हो, बता दो। हूँ! [illegible] हो, [illegible] नहीं [illegible]।

[illegible] माँ, तुम [illegible] नहीं [illegible]? तुम [illegible] [illegible] तुम्हारा प्यार नहीं छूटती।

रहती हो। तुम्हारी ममता अथाह है माँ! उसकी तह में आशा की अनन्त धारा अबाध गति से बहती रहती है।

बहुत से सुहृद मिलते हैं माँ! पिताजी की आत्मा मुझ में रहती है; मित्र मन ही दे देते हैं? सखा सर्वस्व अर्पण करते हैं; सहोदर जीवन में ही मिला देते हैं; पुत्र पुत्री अनुराग की प्रतिमा ही हैं; पत्नी के प्राण ही पति में रहते हैं। परन्तु, तुम्ह कोई नहीं पहुँचते माँ! माँ, तुम्हारे हृदय में हृदय का भी निवास है। हाँ, याद आई माँ! ये सब तो पीछे के सम्बन्धी हैं। मेरे जीवन की पहली साँस तुम्हारी ही साँस थी। तुमने और मैंने ने एक ही नली के द्वारा महीनों साँस ली है। मेरा तुम्हारा जीव ही एक है माँ! फिर क्यों न तुम्हारा हृदय तुम्हारा ही हृदय हो? माँ, हृदय तो तुम्हारे ही पास है, और तो सब सहृदयता की सूरतें हैं।

५७–कोई रोचक कहानी। ५८–हिन्दू-विवाह। ५९–आम और अंगूर। ६०–मूढ़-विश्वास। ६१–गंगा जी। ६२–निन्दा। ६३–चोरी। ६४–तुम क्या व्यवसाय पसन्द करोगे। ६५–कोई समुद्र-यात्रा। ६६–रेलगाड़ी, मोटर और साइकिल की यात्राओं की तुलना। ६७–तुम्हारी प्यारी पुस्तक। ६८–कोई प्रदर्शिनी। ६९–युवकों के आमोद-प्रमोद। ७०–प्रारब्ध और पुरुषार्थ। ७१–भारतीय जलवायु की विशेषताएँ। ७२–पुस्तकालय। ७३–पुस्तकों का चुनना और उनका उपयोग। ७४–हवाई घोड़े दौड़ाना। ७५–कौंसिलों का चुनाव। ७६–नाटकों का भला-बुरा प्रभाव। ७७–किसी दृश्य का चरित्र पर प्रभाव। ७८–प्रतिज्ञा। ७९–आज्ञा-पालन। ८०–जीवन में अवसर का भाग। ८१–कोई पारितोषिक वितरण। ८२–उपन्यासों से लाभ-हानि। ८३–इतिहास और विज्ञान। ८४–दोनों की सहायता। ८५–कालिदास के किसी नाटक का कथानक। ८६–रामायण की लोक शिक्षा। ८७–दरिद्र और अमीरों का जीवन। ८८–मैदान की दौड़ें। ८९–अपनी पढ़ाई का सब से प्रिय विषय। ९०–स्वभाव का प्रभाव। ९१–साहस और बल। ९२–[illegible]। ९३–एकान्त जीवन। ९४–विद्यार्थी। ९५–स्वावलम्बन। ९६–निबन्ध। ९७–पत्र-सम्पादन ९८–नागरिकों और निवासी का जीवन। ९९–प्रकृति का निरीक्षण। १००–शिक्षक और विद्यार्थी का जीवन। १०१–नैतिक या सामान्य [illegible]

१०२–पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे। १०३–संगीत, चित्रकारी और भवन-निर्माण-कला। १०४–पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'।' १०५–'साँच बराबर तप नहीं, झूँठ बराबर पाप।' १०६–मनुष्य के अधिकार। १०७–सेवा-धर्म। १०८–बलिदान। १०९–अहिंसा। ११०–कृष्णावतार। १११–नागरिकता। ११२–डिस्टिक बोर्ड। ११३–म्यूनिसिपल बोर्ड। ११४–ग्राम्य संगठन। ११५ सहकारी समिति (आपरेटिव बैंक)। ११६–कृषि बैंक। ११७–जंगलों का उपयोग। ११८–स्वप्न। ११९–भारत में सिंचाई की रीति। १२०–समाचार पत्र। १२१–देश भक्ति। १२२–ग्रामोफोन। १२३–हड़ताल। १२४–अच्छी आदतें। १२५–पंचायत। १२६–सेविङ्ग बैंक। १२७–तारे। १२८–बिना तार का तार। १२९–आतिथ्य। १३०–मनुष्य जाति के उपकारक।